# अध्याय : 1

# विषय - प्रवेश

अध्याय : 1

# विषय - प्रवेश

## भूमिका

नाटक और मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव के नित्य क्रिया कलापों का सम्बन्ध मनोविज्ञान बताता है जिनमें मानव के मन का वैज्ञानिक विश्लेषण सर्व प्रमुख होता है। कोई भी नाटककार अपने देश, काल और समाज से प्रभावित होकर नाट्य-साहित्य का सृजन करता है, जिसमें किसी न किसी रूप में मानव मन की विभिन्न स्थितियों, विकारों, विकृतियों आदि का चित्रण किया जाता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में विष्णु प्रभाकर का महत्वपूर्ण स्थान है। वे मनोविज्ञान के पारखी हैं, उनके साहित्य में मनोविज्ञान के कुछ पहलू कम-अधिक मात्रा में दिखायी पड़ते हैं। उनका नाटक साहित्य भी इससे अलग नहीं है। मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में आलोचकों ने उनके तीन नाटकों - "डॉक्टर", "टगर" और "बंदिनी" को मनोवैज्ञानिक नाटक माना है। लघुशोध प्रबंध की सीमा को परिलक्षित करते हुए यहाँ उनके उपर्युक्त तीन नाटकों का मनोवैज्ञानिक विवेचन-विश्लेषण करना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य है।

## नाटक और मनोविज्ञान

साहित्य मानव जीवन के गतिमान सौंदर्य का सांस्कृतिक बोध है। साहित्य मानव निर्मित है। साहित्य की एक सशक्त विधा नाटक है और नाटक और मनोविज्ञान का अन्योन्य सम्बन्ध सर्वोपरि है जिसका पारस्परिक सम्बन्ध और स्वरूप विवेचन निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है -

## नाटक एक विशिष्ट साहित्य-विधा

नाटक हमारे यथार्थ जीवन के अधिक निकट है। उसका मानव-जीवन और समाज में बहुत निकट और घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता, उपन्यास तथा कहानी

इत्यादि पाठक के सम्मुख कल्पना द्वारा समाज के चित्र को प्रस्तुत करते हैं, किन्तु नाटक, शब्द, पात्रों की वेश-भूषा, उनकी आकृति, भाव-भंगिमा, क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक को समाज के यथार्थ जीवन के निकट ला देते हैं। श्रव्य या पाठ्य काव्य का समाज से सीधा सम्बन्ध नहीं, रंगमंच की सहायता से समाज के वास्तविक उपादानों को एकत्रित कर दिया जाता है। नाटक में प्रभावोत्पादन की शक्ति अधिक होती है।

नाटक का सम्बन्ध समाज से होने के कारण समाज के शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग नाटक द्वारा मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षित और अशिक्षित दोनों के लिए वह बुद्धिगम्य होता है। कलात्मक दृष्टि से भी नाटक साहित्य के विभिन्न रूपों से श्रेष्ठ समझा जाता है। नाटक सर्वकला-समन्वित होता है - नाटक में वास्तुकला, संगीतकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा काव्यकला - सभी का समावेश हो जाता है। भरतमुनि कहते हैं, "जो इस नाट्य में न मिले ऐसा न तो कोई ज्ञान है न शिल्प है न विद्या है न कला है न योग है और न ही कोई कार्य हो सकता है।"[1]

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन मुख्य तत्व माने हैं - 1· वस्तु, 2· नायक, 3· रस। पाश्चात्य आचार्यों ने तत्वों की संख्या छः मानी है - 1· कथावस्तु, 2· पात्र, 3· कथोपकथन, 4· देश, काल वातावरण, 5· उद्देश्य, 6· शैली।

**कथावस्तु** : नाटक में कथावस्तु को विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है - प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम। जिसमें फल-प्राप्ति की आशा लेकर , फल की इच्छा, फल की आशा, तथा फल की निश्चिति आदि से गुजरना पड़ता है। कथानक को मुख्य फल-प्राप्ति की ओर अग्रसर करनेवाले चमत्कारपूर्ण अंश को **अर्थप्रकृति** कहते हैं। नाटक की अवस्थाओं और अर्थ-प्रकृतियों में मेल कराने का कार्य सन्धियाँ करती हैं। यथा -

| | अर्थ-प्रकृति | अवस्था | सन्धि |
|---|---|---|---|
| 1· | बीज | प्रारम्भ | मुख |
| 2· | बिन्दु | प्रयत्न | प्रतिमुख |
| 3· | पताका | प्राप्त्याशा | गर्भ |
| 4· | प्रकरी | नियताप्ति | विमर्श |
| 5· | कार्य | फलागम | उपसंहार |

**पात्र** : नायक नाटक का प्रमुख पात्र होता है। नाटक कथा को विकसित करता है। नाटक में नायक की उपस्थिति आदि से अन्त तक मानी जाती थी। नायक उच्च कुलोत्पन्न, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलनेवाला, स्थिर, उत्साही, प्रज्ञावान, कलावान, धार्मिक होना चाहिए। नायक के चार भेद है।1· धीरोदत्त नायक 2· धीरललित नायक, 3· धीरप्रशान्त नायक, 4· धीरोद्धत नायक। धीरोदात्त नायक में धैर्य मुख्य गुण होता है। आत्मप्रशंसाहीन होता है। धीरललित नायक शृंगार-प्रेमी होता है। सुखान्वेषी होता है। धीरप्रशांत नायक शान्ति प्रिय, कोमल होता है। धीरोद्धत नायक में दोष पाये जाते हैं। धोखेबाज होता है।

भारतीय आचार्यों ने नायक की पत्नी नायिका के भी चार भेद माने हैं 1· दिव्या, 2· नृपति नीर, 3· कुल-स्त्री, 4· गणिजा। तथा पाश्चात्य आचार्यों के मतानुसार - 1· स्वकीया, 2· परकीया, 3· सामान्य।

स्वकीया अपनी पत्नी होती है, परकीया दूसरे की पत्नी भी हो सकती है और अविवाहिता भी। सामान्या किसी की पत्नी नहीं होती। उसे वेश्या या गणिका भी कहते हैं। प्रतिनायक, विदूषक, विट और चेट भी प्रतिनायक कहलाते हैं।

**चरित्र चित्रण** : चरित्र चित्रण में चरित्रिक उत्थान पतन, मानसिक उतार-चढाव और विभिन्न भावों और आदर्शों का चित्रण उसमें पर्याप्त होता है। चरित्र चित्रण को कथोपकथन द्वारा, स्वगत-कथन द्वारा, कार्य-कलापों द्वारा उभारा जाता है।

**कथोपकथन** : नाटक का विकास कथोपकथन से ही माना जाता है। कथोपकथन - 1· नियत श्राव्य। 2· सर्वश्राव्य। 3· अश्राव्य।

1· नियत-श्राव्य में कुछ निश्चित पात्रों के सामने ही बातचीत होती है।

2· सर्वश्राव्य में बातचीत सबके सुनने के लिए होती है।

3· अश्राव्य में केवल आत्मगत या स्वगत बाते होती हैं।

**देश, काल तथा वातावरण** : पात्रों के व्यक्तित्व में वास्तविकता लाने के लिए परिवेश, काल, वातावरण आदि का ख्याल रखा जाता है। वातावरण के विपरीत चित्रण अवास्तविक लगता है। जो बातें रंगमंच पर घटित हो सकती हैं उन्हीं बातों का वर्णन नाटक में होना चाहिए।

**उद्देश्य** : आत्माभिव्यक्ति नाटक का उद्देश्य होता है। पाश्चात्यों के अनुसार जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना भी नाटक का उद्देश्य माना गया। रस को कथ्य की आत्मा स्वीकार किया गया है तो रस की अभिव्यक्ति ही नाटक का मुख्य उद्देश्य है। भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ और काम में किसी एक की सिद्धि तथा तीनों की ही सिद्धि नाटक का उद्देश्य माना है।

**अभिनय** : आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनय के चार प्रमुख भेद हैं। अभिनय का सम्बन्ध शरीर के विभिन्न अंगों से है। हँसना, रोना, लज्जान्वित होना, आदि चेष्टाएँ अभिनय में आती हैं। शब्द, स्वर, वेशभूषा, आभूषणों, वस्त्रों, रंगों, रूमं, कंप आदि द्वारा अभिनय प्रकट होता है।

1· **रंगमंच** : रंगमंच मनुष्य की सनातन प्रवृत्ति है। नाटक और रंगशाला का आख्यान ही रंगमंच का आख्यान है। नाटक के बिना रंगमंच की कल्पना संभव नहीं और जो रंगमंच पर खेला नहीं जा सकता, वह नाटक नाटक नहीं हो सकता। रंगमंचीय क्रिया द्वारा मानव जीवन का जीवन्त रूप प्रदर्शित होता है।[2]

रंगमंच शब्द "रंग" और "मंच" इन दो शब्दों के योग से बना है। "रंगमंच" अंग्रेजी के "थियेटर" शब्द का पर्याय है। मंच का अर्थ मंडप या "रंगभूमि" है। मानक हिन्दी कोश में रंग शब्द के अर्थ - "मनोविनोद के लिए की जाने वाली क्रीडा और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द। नृत्य, गीत आदि का उत्सव वह स्थान जहाँ नृत्य या अभिनय होता हो।"[3] आदि दिये गए हैं।

आधुनिक काल में "रंग" शब्द अनिवार्य रूप में साहित्य में नाट्य-विधा में जुड़ गया है और रंग रंजन के लिए किये जाने वाले नाट्याभिनय और उससे जड़े आनन्द का बोध देता है।

"मंच" शब्द का अर्थ "सभा समितियों में ऊँचा बना हुआ मण्डप" माना जाता है जिस पर बैठकर सर्वसाधारण के सामने किसी प्रकार का कार्य किया जाय। "मंच" शब्द अंग्रेजी शब्द "स्टेज" के समकक्ष प्रतीत होता है। संसार के प्रत्येक देश का अपना रंगमंच होता है। रंगमंच एक जीवन्त कला है और संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। वह जीवन के मूल्यों और क्रियाओं से सम्बन्ध है। डॉ॰ अज्ञात लिखते हैं, "नाट्य-मंडप रंगमंच का स्थूल शरीर है। नाटक इसका सूक्ष्म है और अभिनयादि इसकी आत्मा या प्राण है।।···रंगमंच एक साथ ही कला, विज्ञान और योग का समन्वित अधिष्ठान है।"[4]

नाट्शास्त्र के अनुसार भरतमुनि ने प्रेक्षागृह की तीन स्थितियाँ निश्चित की हैं। विकृष्ट, चतुरस्त्र और त्रस्त विस्तार के अनुसार इन्हें जेष्ठ, मध्यम और अवर कहा जाता है । निम्नलिखित आरेख देखिए :-

मध्यम विकृष्ट नाट्य-मण्डप: पार्श्व-दर्शन (लौंग सेक्शन)




चित्र सं.३

संकेत-चिन्ह
म.= मतवारणी
सं.= सजवन (रेलिंग)
ग.= गवाक्ष

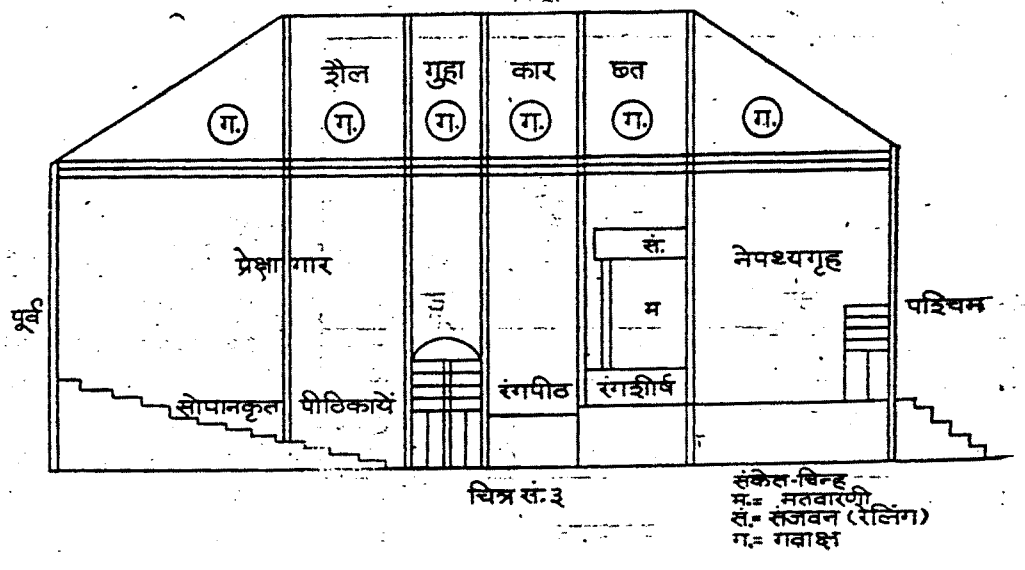

अवर चतुरश्र नाट्य-मण्डप
(४८x४८')




संकेत-चिन्ह
म.= मतवारणी
⊙ प्रथम दश स्तंभ
△ द्वितीय छः स्तंभ
⊡ तृतीय आठ स्तंभ

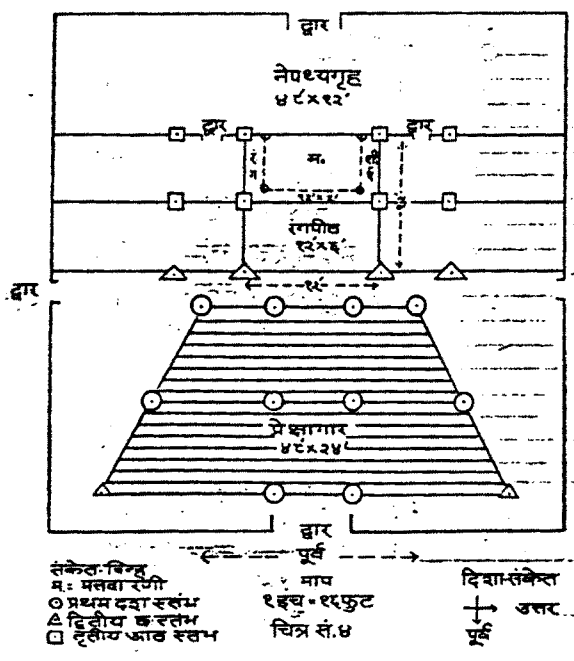

माप
१इंच = १६फुट
चित्र सं.४

दिशा-संकेत
उत्तर
पूर्व

अवर त्र्यश्र नाट्य-मण्डप
(४८x४८x४८')

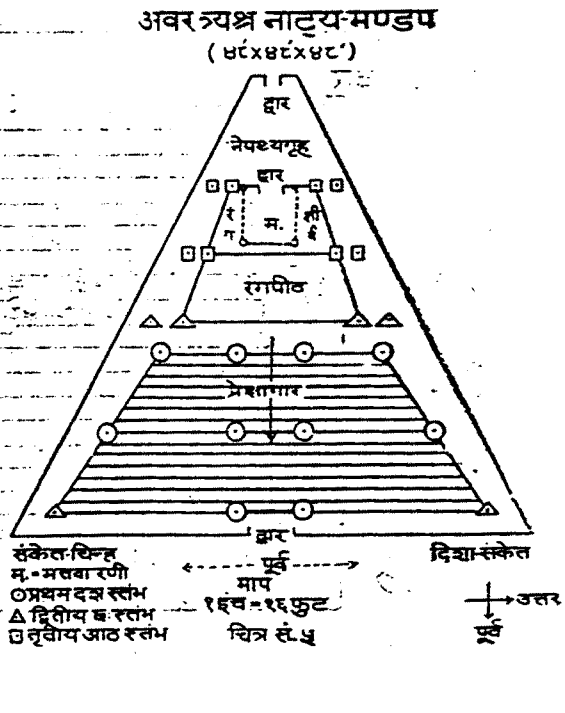




संकेत-चिन्ह
म.= मतवारणी
⊙ प्रथम दश स्तंभ
△ द्वितीय छः स्तंभ
⊡ तृतीय आठ स्तंभ

माप
१इंच = १६फुट
चित्र सं.५

दिशा-संकेत
उत्तर
पूर्व

भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास - डॉ. अज्ञात, पृ. 40 से उद्धृत

प्रदर्शन और दृश्य प्रस्तुति कला है नाट्य रचना कला और विज्ञान दोनो है जो रंगमंच के गहरे सानिध्य को संकेत करती है। विख्यात हिन्दी नाटककार डॉ॰लाल ने रंगमंच के बारे में काफी लिखा है। उनका कथन है - "रंगमंच एक भाव है, एक अनुभूति है, जिसकी अपनी असीम व्यापकता और गहराई है। इसके मूल भाव और इसकी सम्पूर्ण प्रकृति के साथ ही मनुष्य जन्म लेता है। ....रंगमंच की आत्मा नाटक अथवा नाटकीयता है और उसका सनातन धर्म प्रदर्शन है।यह प्रदर्शन या सत्य समान रूप से मनुष्य के लिए भी लागू है। तभी यह कहना सत्य है कि रंगमंच की सत्ता मनुष्य जीवन के साथ है, बल्कि एक दूसरे का पर्याय जैसा है।5

रंगमंच एक व्यापक तत्व है। रंगमंच के अन्तर्गत विविध रंगकर्मी और निर्देशक का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। निर्देशक के निर्देशन पर ही अभिनेता और अभिनेत्रीयाँ, अभिनय करती हैं। नाटककार उसकी नाट्रचना तथा नेपथ्य और रंगकर्मीयों के अभिनय एवं दृश्यविधान, प्रकाश योजना आदि को सम्यक्त रूप में जोडने वाली एक जबर्दस्त कड़ी निर्देशक ही है। संक्षेप में, रंगमंच एक सामूहिक कला है।

**दर्शक** : नाटक रंगमंच पर खेला जाता है और उसे देखनेवाले लोगों को दर्शक या प्रेक्षक कहा जाता है। किसी भी नाटक की सफलता जितनी उसकी कथ्य, शिल्प, शैली और रंगमंचियता पर निर्भर करती है उतनी वह दर्शकों की प्रतिक्रियाओं पर भी निर्भर होती है। किसी भी नाटक के लिए प्रेक्षक एक अनिवार्य तथ्य है। नाटक और दर्शकों का घनिष्ट सम्बन्ध है। "हजारो दर्शको" की उपस्थिति जहाँ ध्यान की एकाग्रता के लिए संविधनक के सावधानीपूर्ण नियमन की माँग करती है वही इस बात की संभावना भी उत्पन्न करती है कि नाटक में जीवन की गहरी अनुभूतियों का चित्रण हो। इतने सारे दर्शक एक साथ नाटक द्वारा तभी बाँध सकते हैं जब अनुभूतियाँ काफी व्यापक और गहरी हो जो दर्शकों में गहरी भवोत्तेजना और विचार-प्रवाह उत्पन्न कर सके।[6]

नाटक देखने के लिए किसी भी प्रकार का दर्शक रंगशाला में आ सकता है। अतः अन्य या सुसंस्कृत दर्शकों के साथ ही साथ साधारण व्यक्ति भी दर्शक

के रूप में नाटक देखता है अतः सभी प्रकार के प्रेक्षकों पर यथार्थ प्रभाव डालनेवाला नाटक विशेष महत्वपूर्ण होता है। बिना प्रेक्षकों के नाटक का मंचन हो ही नहीं सकता है। क्योंकि वे चलचित्र नहीं हैं। मंच पर अभिनेता और अभिनेत्रियाँ जो अभिनय करते हैं वह जीवन्त कला है और उस जीवन्त कला के लिए जीवन्त प्रेक्षकों की आवश्यकता भी है। एक संदर्भ में विख्यात नाटककार डॉ॰लक्ष्मी नारायण लाल का वक्तव्य उचित ही है - "मुझे चिन्ता दर्शक की रहती है, प्रेक्षक की रहती है, उसी को मैं अपना स्वामी मानता हूं, वह मेरा पेटर्न है, वही मेरा राजा है, मै तो उसकी प्रजा हूं, मैं तो उसके रंजन के लिए काम कर रहा हूं, उसका रंजन नहीं हुआ, उसको संतोष नहीं हुआ, कलात्मक क्षुधा की शान्ति नहीं हुई तो मैं असफल मानता हूं।"[7]

**मनोविज्ञान और अन्य ज्ञान-विज्ञान** (Reletion at Phychology with other sciences)

मनोविज्ञान में वे सभी गुण पाये जाते हैं जो एक विज्ञान की विशेषताओं में व्यक्त होते हैं, इस कारण मनोविज्ञान को विज्ञान की संज्ञा दी जाती हैं। मनोविज्ञान के अध्ययन का अन्य विज्ञानों पर प्रभाव पड़ता है। अन्य विज्ञानों में हुए अन्वेषण भी मनोविज्ञान पर प्रभाव डालते हैं। मनोविज्ञान और अन्य विज्ञानों में परस्पर सम्बन्ध हैं।

1· मनोविज्ञान और जीवन-विज्ञान। (Pesychology & Biology)

2· मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान। (Pesychology & Physiology)

3· मनोविज्ञान और समाज-विज्ञान (Pesychology & Sociology)

1· **मनोविज्ञान और जीव-विज्ञान** : मनोविज्ञान एक मानसिक विज्ञान है।जीव विज्ञान में जीवित मनुष्यों के जीवन सम्बन्धी तत्वों का अध्ययन होता है और जीव का सम्बन्ध शरिर से होता है। मानसिक प्रक्रिया की व्याख्या बिन साहचारी शारीरिक प्रक्रिया के नहीं की जा सकती, इसलिए हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए जीव-विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। मानव की मानसिक प्रक्रियाओं का, रहस्य समझने के लिए जीवन विज्ञान सहायता प्रदान करता है। इसलिए हम कह

सकते हैं कि मनोविज्ञान के अध्ययन में जीवविज्ञान का ज्ञान लाभप्रद हैं।

2· **मनोविज्ञान और शरीर विज्ञान** :

शरीर विज्ञान शरीर के विभिन्न भागों की बनावट और कार्यप्रणाली का अध्ययन करता है, तो मनोविज्ञान मन और शरीर का अध्ययन करके मानव आचरण की व्याख्या करता है। इसलिए मनोविज्ञान का अध्ययन बिना शरीर शास्त्र के हो नहीं सकता। इस प्रकार मानसिक क्रियाओं और शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन अलग-अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मानसिक क्रिया का कोई-न-कोई शारीरिक कारण होता है। इसलिए छोटी-छोटी क्रियाएँ हम किसी उत्तेजना के कारण ही करते हैं। उसमें हमारे मन के व्यापार एवं शरीर की प्रतिक्रिया सम्मिलित होती है। जैसे जैसे आँखों कि तरफ उंगली बढ़ायी जाए तो आँखे अपने आप मिट जाती हैं। इसलिए मानसिक क्रियाओं और शारीरिक क्रियाओं को एक दूसरे से अलग करना कठिन है।

3· **मनोविज्ञान और समाजविज्ञान**

समाज विज्ञान में समाज का स्वभाव, उत्पत्ति और विकास का अध्ययन होता है। समाज विज्ञान का परिवार के साथ सम्बन्ध होता है। ..... ..... क्योंकि समाज की आदते, रीतीरिवाज, परम्परा, आदि का असर व्यक्ति पर होता है। क्योंकि मानव समाजप्रिय प्राणी है। व्यक्ति सामाजिक परिवेश में रहता है। सामाजिक परिवेश को समाज का संगठन, रीत-रिवाज, परम्पराएँ आदि विषय कि धारणाएँ इ· के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके ही समझा जा सकता है। यह सब ज्ञान समाज में ही मिलता है। तो मनोविज्ञान भी व्यक्ति और समाज का अध्ययन करता है। क्योंकि व्यक्ति समाज का एक इकाई है। जो समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है। इस कारण मनोविज्ञान और समाजविज्ञान का सम्बन्ध है।

## मनोविज्ञान : अर्थबोध और परिभाषा

**मन का अर्थ :** भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने "मन" के बारे में काफी चिन्तन किया है। भारतीय विचारकों के अनुसार - "मन का अर्थ - हृदय, प्रज्ञा, चेतना, सोच, विचार, संकल्प, कामना, इच्छा, रूचि इ॰।"[8] पाश्चात्यों ने मन को (Mind) कहा है।

"मन" को मानव के सभी इन्द्रियों ने शक्तिशाली और समस्त शक्ति की मूल प्रेरणा माना है। मन अचेतन - चेतन शक्ति का उद्‌गम है। मन चंचल, गतिशील तथा दृढ है। आधुनिक युग के मनोविज्ञान का अधिपत्य सर्वत्र व्याप्त है। आज मनोविज्ञान को "व्यवहार का विज्ञान" माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ॰देवराज उपाध्याय ने कहा है - "इस शताब्दी के जान-वृक्ष की सबसे तरूण, नव-जवान, स्फूर्त, कोमल तथा लचीली शाखा मनोविज्ञान की है और वह नव-यौवन की उमंग में सारे विश्व पर छा जाना चाहती है।"[9]

मनोविज्ञान के बारे में वर्तमान शताब्दी में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। पर "मनोविज्ञान शब्द का प्रयोग प्रथम बार सत्रहवी शताब्दी में ही हुआ। अतः स्पष्ट है कि "मनोविज्ञान" शब्द तीन सौ वर्ष पुराना है। हिन्दी में प्रयुक्त मनोविज्ञान शब्द अंग्रेजी के "साइकॉलॉजी" शब्द के रूपान्तरित रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसका मूल प्रतिपाद्य (Psyche or Soul) अथवा आत्मा है। मनोविज्ञान की आधारभूमि दर्शनशास्त्र है। परन्तु मनोविज्ञान की सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के समान्तर एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापना वर्तमान युग में ही हो सकी।

**मनोविज्ञान की कुछ परिभाषाएँ दृष्टव्य हैं -**

**जेम्स ड्रेवर :** "मनोविज्ञान, वह शुध्द विज्ञान है, जो मानव तथा पशु के उस क्रिया-कलाप का अध्ययन करता है, जो उसके मनःसंसार में घटित होता है।"[10]

**चार्ल्स ई। स्किनर** : मनोविज्ञान जीवन की विविध परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रतिक्रियाओं अथवा व्यवहार से तात्पर्य प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं, समायोजनों, कार्यो तथा अनुभवों से हैं।"[11]

उपर्युक्त परिभाषाएँ मनोविज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालती हैं। उपर दी गई परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान मानव तथा पशु के व्यवहार का निरीक्षण करनेवाला तथा उनके मानसिक जीवन का अध्ययन करनेवाला एक शुध्द विज्ञान है। मानव के मस्तिष्क को और शरीर में फैले हुए स्नायुओं के जाल पर मनोविका, मनोविकृतियाँ, व्यक्तित्व आदि का वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाला शास्त्र मनोविज्ञान है।

**मनोविज्ञान की दो प्रमुख शाखाएँ**

1· सामान्य मनोविज्ञान।

2· असामान्य मनोविज्ञान।

1· **सामान्य मनोविज्ञान** : इस शाखा में साधारण परिस्थितियों में साधारण मानव व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है। एक सामान्य व्यक्ति बहुधा सामाजिक मर्यादा के अंतर्गत काम करता है। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी वह अपना संतुलन बनाये रखता है। जिस व्यक्ति में रचनात्मक सम्भावनायें विद्यमान रहती हैं उसे सामान्य व्यक्ति कहा जा सकता है। यदि किसी सामान्य व्यक्ति से कोई गलत कार्य हो जाता है तो उसके लिए वह दुखी होता है और पश्चाताप करता है। एक सामान्य व्यक्ति के लक्षण चरमसीमा पर नहीं होते, उसमें अपने को परिस्थिति के अनुसार ढालने की क्षमता होती है। सामान्य व्यक्ति को अपने सामाजिक आदर्शों और मान्यताओं का ध्यान रहता है। सामान्य विज्ञान की इस शाखा में इन मानव व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

2· **असामान्य मनोविज्ञान** : असामान्य मनोविज्ञान में विभिन्न असामान्य मानसिक रोगों या पीडाओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे स्नायु रोग, उन्माद-रोग या पीडाएँ आदि। सामान्य व्यक्ति की क्रियाशीलताएँ , प्रायः सामाजिक मर्यादाओं

के अनुरूप नहीं होती। वे अत्यधिक उग्र, संवेदनशील, स्वार्थी, चिड़चिड़े तथा तुनुक मिजाजी होते हैं। असामान्य व्यक्ति प्रायः असामाजिक होता है। वह स्वार्थी तथा अहंकारी होता है। असामान्य व्यक्ति संवेगात्मक दृष्टि से अस्थिर होता है। असामान्य व्यक्ति अपने लिए तथा परिवार के लिए बोझ-स्वरूप होते हैं।

**मन के गत्यात्मक पहलू**

मनोविज्ञान मन का वैधानिक विवेचन विश्लेषण करनेवाला एक शास्त्र है। गत्यात्मक पहलू वह साधन है जिसके माध्यम से मूल प्रवृत्तियों में उत्पन्न होनेवाले संघर्षों का समाधान ढूँढा जा सकता है। इसके अंतर्गत मन की संरचना को तीन भागों - 1· इद्, 2· अहम्, 3· पराहम्। में विभाजित करके वैज्ञानिकों ने इसतरह विश्लेषित किया है -

**फ्रायड़ का मनोविश्लेषण**

1·इद(Id) फ्रायड़ के अनुसार इद् इच्छाओं की जननी है। इद् की उत्पत्ति बच्चे के जन्म के साथ ही हो जाती है। इसमें जन्मजात तत्व भी निहीत होते हैं। इद् जिजीविषा और ममूर्षा मूलवृत्ति दोनों का केंद्र है। इसका उद्देश्य इच्छाओं की पूर्ति है। इसमें व्यक्ति रचनात्मक तथा विध्वंसात्मक दोनों प्रकार की क्रियाएँ करता है। इद् व्यक्तित्व (Personality) का मुख्य आधार होती है इसमें मूल प्रवृत्तियों का वास होता है।

2· अहम् (Ego) : अहम् अंशतः चेतन और अंशतः अचेतन है। अहम् की प्रतिक्रिया मांस-पेशियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यह बाधा उपस्थित होने पर अपनी रक्षा तथा चिन्ताओं से मुक्ति पाने हेतु यदि संभव हो तो सीधे रूप में अन्यथा रक्षायुक्तियों के माध्यम से संतोष प्राप्त कर लेना है। अहम् का ढाँचा "इद" पर आधारित होता है। अहम् का शक्तिस्त्रोत कामशक्ति (Libido) है। यह मानव व्यवहार के संचालन के लिए वास्तविकता के सिध्दान्त को स्वीकार करता है। व्यक्तित्व के संगठित व्यक्तित्व की शख्त ही अहम् की शक्ति होती है।

3· **पराहम्** (Superego) पराहम् व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। जिसे हम अन्तश्चेतना या अंतरात्मा भी कहते हैं। फ्रायड़ ने नैतिकाहय् का सभ्यता, संसकृति व धर्म, नैतिकता आदि से अट्ट सम्बन्ध स्विकार किया है। पराहम् अहम् का ऐसा विकसित रूप है जो "अहम्" (Ego) के विकास के पश्चात ही विकसित होता है। पराहम् व्यक्ति के मानसिक संरचना का नैतिक पक्ष होने के कारण वह नैतिक आचरण को प्रोत्साहित करता है और अनैतिक आचरण को हाथोत्साहित करता है। वास्तव में मानव के ये तीन गत्यात्मक पहलू अलग न होकर एक दूसरे से संम्बन्ध और सम्पूरक हैं।

फ्रायड़ ने मानसिक रोगियों के अनेक अतार्किक तथा समय-स्थान की दृष्टि से असंगत कथनों के विश्लेषण के आधार पर चेतन मन नही है। इस आधार पर फ्रायड़ ने मानसिक क्रियाओं के तीन स्तर माने - 1· चेतन, 2· अवचेतन, 3· अचेतन।

1· **चेतन** : फ्रायड़ के अनुसार चेतन मन का वह भाग है जो कि तात्कालिक ज्ञान से सम्बन्धित है।[12] अतः चेतन मन का सम्बन्ध वर्तमान से होता है। यह मन का वह स्तर है जहाँ से हम अतीत के अनुभवों, नामों, घटनाओं, परिस्थितियों आदि को स्मरण करते हैं।

2· **अवचेतन** : मन का वह भाग है, जिसमें ऐसी इच्छाएँ हैं जिनका प्रत्यावहन किया जाता है किन्तु चेतन की अपेक्षा अधिक जोर लगाना पड़ता है।

3· **अचेतन** : यह मानव कामनाओं एवं इच्छाओं का पुंज है। उसकी अनेक इच्छाएँ अतृप्त रहती हैं और उन्हें नैतिक कारणों से दमित करना पड़ता है, सभी दमित एवं अतृप्त आकांक्षाएँ अचेतन में वास करती हैं।

**स्वप्न सिध्दान्त की विशिष्टता**

फ्रायड़ ने चेतन की तुलना में अचेतन मन को अधिक महत्वपूर्ण माना है। फ्रायड़ के अनुसार - स्वप्न मनोविक्षिप्ति के समान है, जिसमें हर प्रकार की

विसंगतियाँ, भ्रान्तियाँ तथा भ्रम आदि निहित रहते हैं।"[13] फ्रायड़ के अनुसार दमित इच्छाएँ निद्रावस्था में चेतन के शैथिल्य का लाभ उठाकर स्वप्नों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं।

फ्रायड़ के अनुसार स्वप्न हमें भविष्य के बारे में नहीं बताते, तो वे हमें वर्तमान में सुलझाने वाली अचेतन भावनाग्रन्थियों के सम्बन्ध में कुछ बताते हैं तथा हमें अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ले जाते हैं -

अ· **अर्थपूर्ण** : फ्रायड़ के अनुसार स्वप्न अर्थपूर्ण होते हैं। हमारा प्रत्येक कार्य अर्थपूर्ण होता है। बार-बार हाथ हिलाना, क्रोधित होना इसके पीछे कुछ अर्थ छिपा होता हैं। जो अचेतन मन द्वारा क्रियान्वित होता है।

ब· **इच्छापूर्ति** : प्रत्येक स्वप्न का कुछ उद्देश्य होता है और यह उद्देश्य किसी इच्छा, कामना की संतुष्टि है जो अचेतन में दमित है।

क· **छद्मवेश** : जागृत अवस्था में इद्म, अहम् को मिटाने की चेष्टा करता है। परन्तु निद्रावस्था में नैतिक मन ढीला पड़ जाता है तो इद्म में दबी हुई इच्छाएँ छद्मवेश धारण कर वास्तविक रूप में प्रयुक्त होती है। फ्रायड़ ने मुख्यतः **काम** एवं **काम**-सम्बध्द पर बल दिया है। उसके अनुसार सांप, जांघ, सिगार आदि पुरुष लिंग के प्रतिक हैं तो बर्तन, घर, डिब्बा आदि स्त्री लिंग के प्रतिक हैं और नाचना, फिसलना, आदि योन समागम की प्रतिक हैं। जीव-जन्तू, कीड़े-मकोड़े, भाई-बहन के प्रतीक हैं तो ईश्वर या राजा-रानी माता-पिता के प्रतीक हैं। फ्रायड़ के अनुसार स्वतन्त्र साहचर्य विधि द्वारा स्वप्नों का अर्थ लगाया जा सकता है।

**एडलर का मनोविश्लेषण**

एडलर ने अपने वैयक्तिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत जिन निष्पतियों की प्रतिष्ठा की वे - 1· हीन भावना ग्रन्थि, 2· श्रेष्ठ भावना ग्रन्थी, 3· जीवनलक्ष्य, 4·जीवन की रचनात्मक शक्ति, 5· जीवन शैली, 6· समाजवाद की व्याख्या, 7· स्वप्न-विश्लेषण, 8· दिवास्वप्न की व्याख्या, 9· स्मृतियों का महत्व, 10· व्यक्तित्व

का सम्पूर्णता पर बल, 11· व्यक्तित्व के प्रकार।

एडलर ने चेतन, अचेतन इ· स्तरों के रूप में व्यक्ति को विभाजित न कर, उनके समग्र रूपों को मूलतः हीन भावना ग्रन्थि और श्रेष्ठ भावना ग्रन्थि से परिचालित माना है। फ्रायड़ के अनुसार एडलर ने भी स्वप्न सिध्दान्त की धारणा को स्वीकार किया है। परन्तु उन्हें उस रूप में अचेतनजन्य नहीं माना। उन्होंने स्वप्नों की व्याख्या दिवा स्वप्नों और अतीत की स्मृतियों के रूप में की। एडलर ने व्यक्ति की सम्पूर्णता पर बल देते हुए व्यक्तित्व के प्रकारों को भी निर्धारित किया है।

**स्वप्न** : एडलर के स्वप्न सम्बन्धि विचार फ्रायड़ के स्वप्न-सम्बन्धि विचारों से कुछ भिन्न हैं। एडलर का कहना है, हर एक व्यक्ति अपना अधिपत्य जमाने की इच्छा रखता है। व्यक्ति में अपना प्रमुख स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। स्वप्नों का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान से हैं। एडलर समस्याओं को केवल "काम" सम्बन्धी ही नहीं मानता उसकी मान्यता है कि व्यक्ति की समस्याएँ उसकी हीनभावना की प्रवृत्ति को दूर करना और व्यक्ति का प्रभुत्व स्थापित करना, इनमें हैं।

**युंग का मनोविश्लेषण**

युंग का विशेष प्रयास मनोविश्लेषणवादी विधियों का जर्मन प्रयोगशालाओं में विकसित विधियों में समन्वय करने की ओर रहा। युंग ने सर्वप्रथम लिबिड़ो की अवधारणा के अन्तर्गत फ्रायड़ की यौनिक प्रवृत्ति सम्बन्धी मान्यता को अस्वीकार करते हुए शापित-हावर तथा बर्गसॉ के प्रभावाधीन जिजीविषा के अन्तर्गत समाहित किया। उन्होंने शिशु मनोविज्ञान की अवधारणा का खण्डन किया। सामूहिक अचेतन को ही आधार मानकर युग ने अपने स्वप्न-सिध्दान्त को निर्धारित किया। वैयक्तिक अचेतन में तो केवल व्यक्ति की दमित वासनाएँ, अपूर्ण इच्छाएँ एवं अनुभव रहते हैं लेकिन सामूहिक स्तर पर भी अचेतन जीवन के सन्दर्भों से जुडा रहता है। युंग के अनुसार स्वप्नों में भविष्य भी संकेतित रहता है। इस प्रकार स्वप्न-सिध्दान्त

के क्षेत्र में युंग ने एडलर से भी आगे तक की स्थिति का अन्वेषण किया। एडलर ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर भी विचार किया है।

**स्वप्न**

युग के व्यक्ति के अचेतन को दो पहलू में बाँटा है - 1· व्यक्तिगत अचेतन (Individual) और 2· जातीय अचेतन (Racial) "व्यक्तिगत अचेतन" व्यक्ति अपने जीवन में अर्जित करता है। परन्तु जातिय अचेतन उसमें जन्म के समय से ही होता है, जिसमें व्यक्ति के पूर्वजो की अनेक इच्छाएँ, अनुभव आदि संकलित हो सकते हैं। जीने की इच्छा भी मानव की विशिष्टता है। युंग का कहना है स्वप्नों द्वारा हम अपने जीने की इच्छापूर्ति करना चाहते हैं। यह जातिय अचेतन के संचित अनुभवों पर निर्भर रहती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम चेतन रूप से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते इसी कारण स्वप्न हमें रहस्यमय प्रतित होते हैं। युंग स्वप्न निर्माण के आर्केटाइप (Arche-types) को महत्व देता है।

संक्षेप में फ्रायड़ स्वप्नों का सम्बन्ध भूतकालिन अनुभवों को मानता हैं। एडलर वर्तमान समस्याओं को महत्व देता है और युग भविष्य में होने वाली घटनाओं का सम्बन्ध स्वप्न के साथ जोड़ता है और स्वप्न विश्लेषण के भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों को महत्व देता है।

सामान्यतया स्वप्न के दिवा स्वप्न और रात्री के स्वप्न तथा इच्छापूर्ति स्वप्न, चिन्ता स्वप्न, भविष्यसूचक स्वप्न, मृत्यू स्वप्न, प्रतिरोध स्वप्न, सामूहिक स्वप्न आदि प्रकार माने जाते हैं।

**मानव की मूल प्रवृत्तियाँ**

मूल प्रवृत्ति क्या है ? इसके बारे में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद दिखाई देते हैं। जैसे बालक द्वारा किया जानेवाला स्तनपान भी मूलप्रवृत्यात्मक कार्य है किन्तु इसकी व्याख्या करना कठिन है। मैकडूगल के अनुसार - "मूल प्रवृत्ति मानसिक रचना की मूर्त अभिव्यक्ति है, जिसकी जानकारी हम अनुभव और व्यवहार के परिणामस्वरूप

करते हैं। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति कुछ जन्मजात प्रवृत्तियों को स्थायी निधि के रूप में लेकर जन्म लेता है। इन्हीं विशिष्टताओं के अनुसार व्यक्ति विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है। ये विशिष्ट क्षमताएँ बिना सिखे जन्मजात होती है। मूल प्रवृत्ति ही मनोवृत्ति है। मनोवृत्ति में ही स्वभाव का ज्ञान किया जा सकता है। एक अनुवंशिक अथवा आन्तरिक मनोशारीरिक विन्यास जो उसके रखनेवाले के लिए बाध्य करता है और इस प्रकार की वस्तु को देखकर एक विशेष गुणवाली संवेगात्मक उत्तेजना महसूस करने के लिए और उसके बारे में एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है।

डॉ॰एस॰एस॰माथुर[14]ने मूल प्रवृत्तियों की मैकड्गनल को परिभाषा को इस तरह रूपान्तरित किया है - "किसी वस्तु का ध्यानपूर्वक परीक्षण करते हुए उसके आवेगपूर्ण उद्दीपक को विशिष्ट गुण का अनुभव प्राप्त करना - मूलप्रवृत्ति कहलाता है।" साथ ही मैग्डगल प्रतिपादित चौदह मूल प्रवृत्तियों और उनके सहायक संवेगों को इस तरह तालिकाबद्ध किया है।

| | मूल प्रवृत्तियाँ | सहायक संवेग |
|---|---|---|
| 1॰ | पलायन | भय |
| 2॰ | युयुत्सा | क्रोध |
| 3॰ | विवृत्ति | घृणा |
| 4॰ | शिशु-रक्षक | वात्सल्य |
| 5॰ | शरणागति | करूणा |
| 6॰ | काम-प्रवृत्ति | कामुकता |
| 7॰ | कौतूहल | आश्चर्य |
| 8॰ | दैन्य | आत्महीनता |
| 9॰ | आत्म-गौरव | आत्माभिमान |
| 10॰ | संघ-प्रवृत्ति | एकाकीपन |
| 11॰ | भोजनान्वेषण | भूख |
| 12॰ | संग्रह-प्रवृत्ति | अधिकार भावना |

| | | |
|---|---|---|
| 13· | विधायकता | कृति भाव |
| 14· | हाल | आमोद |

मूल प्रवृत्तियों का निर्माण संवेग पर आधारित है। संवेग मूल प्रवृत्ति को कार्य प्रणाली में सहायता पहुँचाता है। संवेग अनुभव की एक शाखा है, जो मूलप्रवृत्त्यात्मक प्रेरणा के कार्य में सहायता पहुँचाती हैं।

**मनोभाव या मनोविकार**

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि उसके मन में विविध प्रकार की आशाएँ, आकांक्षाएँ, इच्छाएँ हमेशा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं। इसी कारण ये इच्छाएँ विविध प्रकार के रूप धारण करती है। उनके अनुसार मानव मन में विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों का जमघट पैदा होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भाव या विकार की परिभाषा इस प्रकार की है। "इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं।"[15]

मानव मन बड़ा ही जटिल है, मनोभावों या मनोविकारों में सामान्यता नौ स्थायी मनोभावों या मनोविकारों को माना गया है। जो मानव मन की विशिष्ट प्रकार की संवेदनशीलता को व्यक्त करते है, ये विकार इस प्रकार हैं - रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुत्सा, विस्मय, शम। कुछ विचारकों ने वात्सल्य भाव को भी स्थायी भाव माना है। इन स्थायी भावों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भाव मानव मन में उदिप्त होते हैं जिनमें आवेग, दैन्य, जड़ता, स्नेह, मोह, स्वप्न, उन्माद, उत्सुकता, स्मृति, व्याधि, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

**मनोविकार और मनोविकृति में अंतर**

मानव मात्र का जीवन प्रचुर मात्रा में जटिल है, संघर्षपूर्ण है, तथा क्रिया-प्रतिक्रिया से जुड़ा हुआ है। मनुष्य के विधि प्रकार की इच्छाओं के अनुसार उसके

मन में विविध प्रकार की अनुभूतियाँ, विविध प्रकार के मनोविकार जन्म लेते हैं। मानव के मन में उद्‌भूत मनोविकार उसकी इच्छा, आशा, आकांक्षा की ही अनुभूति जन्य भाव प्रवणता है। लेकिन यह भी सच है कि कभी-कभी मनुष्य के मन में निहित मनोविकार इतना विचित्र रूप धारण कर लेते हैं कि मनुष्य का सामान्य व्यवहार बिगड़ जाता है और वह कुछ असामान्य व्यवहार करने लगता है। वास्तव में मनोविज्ञान के दो प्रमुख भेद - सामान्य और असामान्य - इसकी पर ही आधारित हैं। जब मनुष्य सामान्य व्यवहार की अपेक्षा कुछ भिन्न व्यवहार करने लगता है तब उसके मन में उदिप्त-प्रदिप्त मनोविकार अधिक प्रक्षोभक हो जाते हैं, ये प्रक्षोभक मनोविकार ही वास्तव में मानव की मनोविकृतियाँ हैं।

मनुष्य के संघर्षपूर्ण जीवन में जब उसकी आशाएँ, आकांक्षाएँ, इच्छाएँ आदि की पूर्ति नहीं होती है तब वह सामान्यतया असामान्य व्यवहार करने लगता है। मनुष्य के असामान्य व्यवहार के प्रमुख दो कारक हैं - 1· वैयक्तिक, 2· जैविक। व्यक्ति के व्यवहार को असामान्य बनाने में कुछ वैयक्तिक कारक काम करते हैं जिनमें दोषपूर्ण सिखना, प्रतिबल और दुश्चिंतता का प्रभाव होता है, आंतर वैयक्तिक विकृति, मस्तिष्क विकृति, बुरा मानसिक विकास गलत, आत्म प्रत्यय, शारीरिक क्षमता का अभाव इ· है।

जैविक कारकों में व्यक्ति के पैतृक हारमोन्स तथा अंताश्रावी ग्रंथि, गलग्रन्थि, पियुषग्रंथि, थायमस ग्रंथि, प्रजनन ग्रंथि आदि को गिना जाता है। व्यक्ति की विकलांगताएं और शारीरिक गठन भी उसे असामान्य बना देती है। इस प्रकार व्यक्ति की असामान्यताएँ ही विकृतियाँ हैं।

मानव के सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के आधार पर ही उसे निहित मनोविकार और मनोविकृतियाँ उद्‌भूत होती हैं। हिन्दी में प्रयुक्त असामान्य शब्द का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है - हिन्दी में असामान्य शब्द के दो प्रमुख अर्थ हैं - 1· एकस्ट्रॉ ऑर्डिनरी (Extra-ordinary) और "एबनॉर्मल" (Abnormal) एक्स्ट्रॉ ऑर्डिनरी का मतलब है मानव में निहित श्रेष्ठ गुण और उनके आधार पर

उदात्त या श्रेष्ठ कार्य करनेवाला व्यक्ति उदा·लोकमान्य तिलक या डॉ·आंबेडकर अपनी विद्वता, बुध्दिमत्त, राष्ट्रियता तथा प्रतिभा के कारण "एक्स्ट्रॉऑर्डिनरी" अर्थात असामान्य थे।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी में प्रयुक्त असामान्य शब्द अंग्रेजी के "एबनॉर्मल" का रूपान्तरण है। उपर विवेचित, विश्लेषित मनोविकृतियों का जिस व्यक्ति में किसी-न-किसी रूप में प्रादूर्भाव होता है और वह व्यक्ति साधारण (Abnormal) व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न व्यवहार कने लगता है तब मनोवैज्ञानिक शब्दावली में उसे असामान्य (Abnormal) कहा जाता है।

**मनोविकृति के प्रकार**

सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा जब कोई असामान्य व्यवहार करने लगता है तब वह व्यक्ति विविध प्रकार की मनोविकृतियों से पीड़ित होता है। ये विकृतियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। आमतौर पर मनोविकृतियों के निम्न प्रमुख प्रकार माने जाते हैं।

**मनःस्नायुविकृतियाँ**

इस विकृति का शिकार व्यक्ति असंतुलित हो जाता है। इसमें तीव्रता का अभाव होता है। रोगी अकारण घबरा जाता है। थकावट, सरदर्द महसूस करता है। इसमें व्यामोह तथा विभ्रम पाये जाते हैं। महानता का व्यामोह, दण्डात्मक व्यामोह, संन्दर्भ व्यामोह, अपराध व्यामोह, व्यामोह झूठे विश्वास होते हैं। मनः स्नायुविकृति में चिन्ता, भयावह स्थिति, हीनता, अहं-केन्द्रता, संवेदनशीलता, थकान आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें मनोग्रस्तता व बाध्यता मनःस्नायुविकृति, चिन्ता मन स्नायुविकृति, रूपान्तरित क्षोभोन्माद, मनःभ्रान्ति आदि रूप पाये जाते हैं।

**कार्यपरक विकृतियाँ**

कार्यपरक, मनोविकृतियों की मुख्य विशेषता यह होती है कि इसमें अनुवंशिकता अप्रिय अनुभवों, संक्रामक रोग व मस्तिष्क के अज्ञात आघातों के कारण इनकी उत्पत्ति

होती है। इसमें मनोविकलता के लक्षण, मानसिक -ह्रास, वाक्-विकृति, विभ्रम, शारीरिक दशा, व्यवहार सम्बन्धी विकृतियाँ, आदि लक्षण पाये जाते हैं। उत्साह विषाद मनोविकृति में - प्रात्यक्षिकरण की अयोग्यता, अति उत्तेजना, भ्रम, संवेगात्मक तनाव आदि लक्षण पाये जाते हैं। संभ्रान्ति में रोग संभ्रान्ति, उत्पीड़न सभ्रान्ति, महानता से सम्बन्ध संभ्रान्ति, वादाकारी संभ्रान्ति आदि लक्षण पाये जाते हैं। इसके अलावा, ईर्ष्यात्मक संभ्रान्ति, सुधारात्मक संभ्रान्ति तथा धार्मिक संभ्रान्ति भी पायी जाती है।

**यौन विकृतियाँ**

हर व्यक्ति को लैंगिक इच्छाएँ होती हैं। इस इच्छा की पूर्ति हर व्यक्ति भिन्न लिंग व्यक्ति से पूर्ण करता है। परन्तु समाज में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिनका लैंगिक जीवन असामान्य होता है। उनकी लैंगिक इच्छाएँ इतनी विकृत होती हैं कि उनकी काम इच्छा असंगत विषयों से सम्बन्धित होती है। जब लैंगिक क्रिया के उपयोग में स्वाभाविक या सामान्य विधियों का प्रयोग न करके कृत्रिम व असामान्य विधियों को प्रयोग में लाया जाता है तो उसे लैंगिक विकृति कहते हैं। इसमें -

**हस्तमैथुन** : इसमें स्त्री या पुरुष अपनी काम वासना की तृप्ति केवल हाथों के माध्यम से करता है।

**समलैंगिकता** : इसमें काम वासना कि तृप्ति विरोधी लिंग के माध्यम से नहीं तो स्त्री-स्त्री के साथ तथा पुरुष पुरुष के साथ लैंगिक सम्बन्ध से सुख प्राप्ति करता है।

**मुखलिंग विपर्यास** : इसमें मुख को लैंगिक इन्द्रिय पर लगाकर लैंगिक आनन्द प्राप्त किया जाता है।

**गुदालिंग विपर्यास** : यहाँ काम इच्छा की तृप्ति स्त्री के योनि मार्ग से न करके गुदा के उपयोग से किया जाता है।

**परपीड़न रति** :इसमें दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर लैंगिक आनन्द प्राप्त किया जाता है। अपने प्रेमपात्र को पीड़ा पहुँचाकर।

**स्वपीड़न रति** : स्वपीड़न रति में स्वयं को पीड़ा देकर लैंगिक सुख की प्राप्ति करना चाहता है। अपने प्रेमपात्र द्वारा अपमानित, पीड़ित होना चाहता है। इसके अलावा स्पर्श आसक्ति, नग्नातदर्शक आसक्ति, प्रदर्शन प्रवृत्ति, प्रतिजातीय वस्त्र धारण आसक्ति, शिशु कामुकता, पशु कामुकता, शव कामुकता, अकामुकता या अतिकामुकता आदि लैंगिक विकृतियाँ पायी जाती हैं।

**मनोरचनाएँ या रक्षायुक्तियाँ**

मनुष्य वास्तव में एक सुधरा हुआ पशु ही है, और इसी कारण उसे सामाजिक प्राणी कहा जाता है, लेकिन कभी-कभी वह जगत् में असामान्य व्यवहार करने लगता है और विभिन्न प्रकार की मनोविकृतियों से पीड़ित हो जाता है। विकृतमना व्यक्ति अपनी विकृतियों के कारण कभी कभी पशुवत व्यवहार भी करने लगता है लेकिन उसमें निहित मूल मनुष्यता के कारण वह अपने असामान्य या पशुवत व्यवहारों को रोकने की कोशिश भी करता है। मनोविकृत व्यक्ति का यह प्रयास ही रक्षायुक्ति है। ब्राउन के अनुसार - "मनोरचनाएँ या रक्षायुक्तियाँ विविध प्रकार की चेतन व अचेतन प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा आन्तरिक संघर्षों का निराकरण या न्यूनीकरण होता है।"[16]

वास्तव में मनोरचना या रक्षायुक्तियाँ वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से इद्, अहम् तथा पराहम् के बीच उत्पन्न संघर्ष को दूर किया जाता है। रक्षायुक्तियों के दो मुख्य भाग माने जाते हैं। 1· मुख्य रक्षायुक्तियाँ तथा 2· गौण रक्षायुक्तियाँ। मुख्य रक्षायुक्तियों में दमन, शमन, प्रतिक्रिया निर्माण, अन्तर्बाधा, प्रतिगमन, रूपान्तर, उदात्तीकरण, अवदमन आदि रक्षायुक्तियाँ आती हैं।

गौण रक्षायुक्तियों में आत्मीकरण तथा तादात्म्य, प्रक्षेपण या आरोपण, कल्पनातरंग, वास्तविकता से पलायन, स्थानांतरण, क्षतिपूर्ति, प्रत्याहारा, कल्पनातरंग आदि रक्षायुक्तियाँ पायी जाती हैं। रक्षायुक्तियाँ एक प्रकार का सुरक्षात्मक उपाय

है। इससे अन्तर्द्वंद का समाधान होता है।

**चरित्र-विकृति**

सामाजिक दृष्टिकोण से मनोविकृत व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सामान्य अपराधियों से भी अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि इस प्रकार के व्यक्तियों को सामाजिक, नैतिक, कानूनी आदि नियमों की कोई परवाह नहीं होती। इन व्यक्तियों को न ही मनोविकृति की श्रेणी में रखा जा सकता है और न ही मनःस्नायुविकृति की श्रेणी में। मनोविकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का व्यवहार आतंकपूर्ण होता है। मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति वर्तमान आवेगात्मक इच्छाओं को ठीक प्रकार से नियंत्रित नहीं कर पाते, वे प्रायः सामाजिक मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं। इन व्यक्तियों में संवेगात्मक व्यतिक्रम, समाज विरोधी व्यवहार, आत्मकेंद्रित, लैंगिक विपर्यास, अस्थिरता, बहु-व्यक्तित्व आदि लक्षण पाये जाते हैं।

इस प्रकार के व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार के कारण तथा कुछ विशिष्ठ मनोविकृतियों के कारण उनका चरित्र ही विकृत बन जाता है। ऐसे व्यक्ति कभी-कभी समाज में बाहरी तौर से प्रतिष्ठित दिखायी देने पर भी आन्तरिक रूप में वे विकृतिजन्य होते हैं और उनका चरित्र बिघड़ा हुआ बना रहता है।

**व्यक्तित्व** (Personality)

व्यक्ति में निहित विशिष्ठ गुण कार्य-व्यापारों तथा प्रभावोत्पादक विविध घटनाओं का ऐसा विशिष्ठ रूप है जो अन्य व्यक्तियों से उसे अलग कर देता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। व्यक्तित्व के अन्तर्गत मानव का शरीर गठन ग्रन्थि, रचना, पर्यावरण का प्रभाव, पारिवारिक प्रभाव, विविध प्रकार के प्रतिक्रिया स्वरूप, द्वंद आदि तथ्य समाविष्ट हैं। व्यक्तित्व की परिभाषा करना मुश्किल है। जीवन के क्रियाव्यापारों के साथ ही साथ मानव के व्यक्तित्व में ही प्रासंगिक रूप में परिवर्तन होता रहता है फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने जो परिभाषाएं की हैं उनमें सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा गार्डन आलफोर्ट की है। आलपोर्ट के अनुसार - "व्यक्तित्व एक क्रियाशील संगठन - व्यक्ति के पास उन

मनोशारीरिक ढंगों का है जो पर्यावरण में अनूठे ढंग का उनका समायोजन निर्धारित करते हैं।"[17]

### खण्डित व्यक्तित्व

खण्डित व्यक्तित्व का अर्थ है व्यक्तित्व का खण्ड खण्ड हो जाना। खण्डित व्यक्तित्व शब्द खण्डित + व्यक्तित्व से बना हुआ है। हिन्दी में प्रयुक्त खण्डित व्यक्तित्व शब्द प्रयोग अंग्रेजी के (Splil Personality) का पर्यायवाची शब्द है। "खण्डित-व्यक्तिमत्व" एक सामाजिक शब्द है। खण्डित-व्यक्तित्व में मानव का व्यक्तित्व चटख जाता है, उसमें छेद होता है, अथवा दरार पड़ जाती है। मानसिक दृष्टि से वह व्यक्तित्व विकारविकार होता है। रिडर्स डायजेस्ट ग्रेट इलस्ट्रेरेड डिक्शनरी में खण्डित व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "खण्डित-व्यक्तित्व एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति या समूह दो या अधिक व्यक्तित्व प्रदर्शित करता है, जो सापेक्षतया एक दूसरे से अलग होते हैं।" खण्डित-व्यक्तित्व मानव के व्यक्तित्व की असामान्य अवस्था है। यह एक मानसिक स्नायविकृति है। खण्डित व्यक्तित्व में व्यक्तित्व की एकात्मता भंग होती है।

## विष्णु प्रभाकर के नाटकों की अवधारणा

### जन्म तथा बचपन

विष्णु प्रभाकरजी का जन्म 21 जून, 1912 को ग्राम मीरापुर, जिला मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके पिताजी का नाम दुर्गाप्रसाद तथा माताजी का नाम महादेवी था। उन्होंने बचपन के 12 वर्ष माता के पास बिताए। अक्षरज्ञान होने के बाद पिता के पुस्तक संग्रह के किताबों से उनका परिचय हुआ। इसके बाद माँ ने उन्हें आगे की शिक्षा के लिए मामा के पास हिसार भेजा। विष्णुजी के मामा आर्यसमाजी थे। उनके घर में प्रेमचन्द, प्रसाद, बंकीम, रवीन्द्र, शरत् आदि की पुस्तके थी। यही विष्णुजी को साहित्य के बारे में लगाव हुआ।

विष्णुजी का वंश-वृक्ष इसी तरह दिया जाता है -

**श्री विष्णु प्रभाकर की वंश परम्परा**

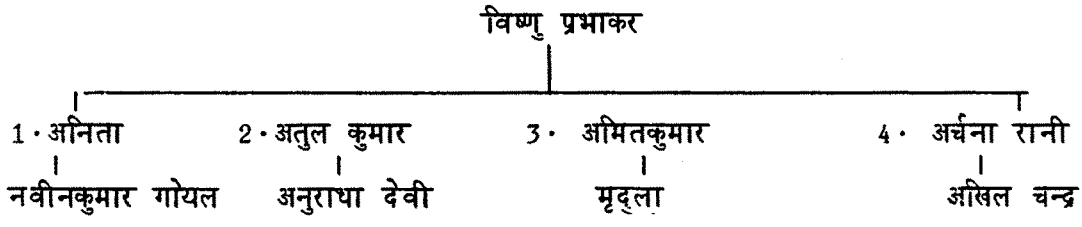


विष्णुजी के पिताजी दुर्गा प्रसाद धार्मिक वृत्ति के थे। उनकी तम्बाकू की दुकान थी। दुर्गा प्रसादजी को घर-गृहस्थी में रुचि नहीं थी, इसलिए गृहस्थी का सारा भार विष्णुजी की माँ महादेवी ने सम्भाला। माँ के साथ दहेज में आयी किताबों को बचपन में फाडकर विष्णुजी ने अक्षरज्ञान पाया है। विष्णुजी ने जीवन की पाठशाला में बहुत कुछ सीखा है। उनके बचपन में मुसीबतों के सिलसिले रहे हैं। कलाकार का सत्य में वे कहते हैं - "आदि कविक का क्रौंचवध एक बार ही हुआ था पर मेरा क्रौंचवध बार-बार मृत्यु की ओर घसीटता रहा।"[18] बचपन में विष्णुजी अंधविश्वासी थे। खादी के व्रत का पालन बचपन से आजीवन किया है।

**शिक्षा**

विष्णुजी की बचपन की शिक्षा मीरापुर में हुई। बाद में उन्हें मामा के यहाँ हिसार जाना पड़ा। यही दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। बचपन के लाड़-प्यार के बाद परिस्थिति के थपेड़े खाते रहे। जीवन में संघर्ष का अनुभव किया। तभी से डायरी लिखना आरम्भ किया। विष्णुजी को माँ कि कमी महसूस होती थी - मेरी पढ़ने की रुचि के पीछे मेरे मामाजी की प्रेरणा रही थे। वे मेरी भावनाओं का ख्याल करते थे। पर माँ नहीं बन सकते थे। कोई बन भी नहीं सकता था। विष्णुजी अन्तर्मुखी स्वभाव के थे। हिसार के चन्दुलाल एंग्लो वैदिक हायस्कूल से 1929 में उन्होने मैट्रिक की द्वितीय श्रेणी में परिक्षा पास की। उसके बाद जिस सरकार से नफरत करते उसी सरकार की चाकरी करनी पड़ी। नौकरी करते हुए उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से "हिन्दी भूषण" पास संस्कृत-विशारद की। उन्होंने अनेक नौकरियों

से त्याग-पत्र दिया। 1944 से 1946 तक "आखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल" में एकाऊन्टेन्ट के पद पर काम किया। बाद में आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र पर भी 1955 से 1957 तक "नाटक निर्देशक" का काम किया। कड़ी मेहनत से जिम्मेदारी निभायी। इसे भी त्याग दिया। त्याग-पत्र देने के उपरान्त ही उन्होंने अपनी प्रसिध्द कृति "आवारा मसीहा" का सृजन किया।

**विवाह**

विष्णु प्रभाकर आन्तरजातीय विवाह करना चाहते थे। पंजाबी युवती के साथ वह विवाह करना चाहते थे। पर माँ के आग्रह के कारण उन्हें सन 1938 में 26 वर्ष की आयु में हरिदार की सुश्री सुशीला से विवाह करना पड़ा। विष्णुजी अपने एक मित्र से लिखे पत्र में कहते हैं, "सुशीला देखने में तो बहुत सुन्दर नहीं जान पड़ती पर इस विषमताओं में उसके सुन्दर हृदय की झांकी जरूर देखी है।"[19] धार्मिक दृष्टि से उनकी शादी देर से हुई। सुशीला ममतामयी नारी थी। विष्णु प्रभाकरजी की गिरी हुई हालत से भी उन्होंने समझोता कर लिया था। विष्णु प्रभाकरजी को साहित्यिक बनाने में उनकी पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान है। वे स्वीकार करते हैं - "उन्हें बहिर्मुखी उनकी पत्नी ने बनाया है। वे वही पत्नी थी जो उनके नौकरी छोडने पर हर बार कह दिया करती थी कि मैंने एक लेखक से विवाह किया है, दफ्तर के किसी नौकर से नहीं। लोगों ने उनकी पत्नी की यहाँ तक प्रशंसा की है कि "आवारा मसीहा" पर दिया जाने वाला साहित्य अकादमी का पुरस्कार विष्णु प्रभाकर के बजाय उनकी पत्नी को दिया जाना चाहिए था क्योंकि वे इस ग्रन्थ की मूल शक्ति थी।"[20] उन्हें कैन्सर था पर भी हसमुख रहती थी। स्वभाव से मिलनसार और मृदुभाषी थी। विष्णुजी के संसार में से 8 जनवरी 1980 को विदा ली। उनके पीछे दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं। विष्णु प्रभाकर के लिए उनकी धर्म पत्नि प्रेरणादायी बनी रही।

**व्यक्तित्व**

विष्णु प्रभाकर हर वक्त दूसरों की भलाई का विचार करते हैं। उनके चेहरे पर अब भी बच्चों जैसी मुसकान होती है। उनके काम में अब भी उत्साह है।

वे खादी की टोपी, कुर्ता और पाजामा पहनते हैं। वेशभूषा से गान्धीवादी लगते तो हैं पर गांधी विचार से कभी नहीं जुडे। संघर्ष ही उनकी शक्ति है। उनके बोलने का अन्दाज प्रभावशाली है। उनके व्यक्तित्व के बारे में सुदर्शन चोपड़ा कहते हैं, खादी की नुकीली टोपी, खादी का पाजामा, कुर्ता और जवाहर जॅकेट। सभी कुछ साफ शफाफ और शिकन विहीन चेहरे पर चमक, रंग गोरा, नक्श तीखे आवाज बधी हुई और बोलने का अन्दाज। प्रभावशाली चेहरे मोहरे से नेता अधिक लगते हैं। साहित्यकार कम । विष्णु प्रभाकर संवेदनशील भारतीय लेखक हैं। वे शान्त और एकान्तप्रिय हैं। मानवीय मूल्यों में उन्हें अटल विश्वास है। विष्णुजी जैसा विनम्र, निश्चल, मृदू, कोमल सरल साहित्यकार हिन्दी में आज दूसरा कोई नहीं है। उनके सम्पर्क मे जो भी व्यक्ति आता है उसे वे अपना लेते हैं। उनका यह परम मानवीय गुण है।

**"प्रभाकर" नाम का सिलसिला**

विष्णुजी के माता-पिता ने उनका नाम सिर्फ विष्णु रखा था। पर विष्णु प्रभाकर कैसे हुआ इसकी एक कहानी हैं। उस समय देवी-देवताओं के नाम से बच्चे को पुकारा जाता था। विष्णुजी के बड़े भाई का नाम ब्रहमा,इसलिए ब्रहमा के बाद विष्णु नाम रखा गया। इसी वजह से ब्रहमा के बाद विष्णु नाम रखा गया। इसी वजह से विष्णुजी के छोटे भाई का नाम महेश रखा गया। विष्णुजी प्रायमरी में दाखिल हुए तो मास्टर साहब ने मस्टर में उनका नाम विष्णु दयाल दर्ज किया। उसके बाद वे मामा के यहाँ हिसार गये तो विष्णु दयाल वैश्य होने के कारण उनका नाम विष्णुगुप्त लिखा गया। इसी नाम से उन्होंने दसवी पास की। उसके बाद नौकरी करनी पड़ी। तब रजिस्टरी में गुप्त नाम के आदमीयों का नाम मौजूद होने के कारण उनका नाम विष्णुदत्त लिखा गया। एक दिन संपादकजी ने विष्णुदत्त नाम छोटा होने के कारण उन्होंने दी हुईपरीक्षा का नाम उनके साथ जोड़ दिया, जो विष्णु "प्रभाकर" हुआ।[21] प्रभाकर नाम से भी उनके जीवन में अनेक गलतफहमियाँ हुई। प्रभाकर माचवे और विष्णु प्रभाकर एक ही व्यक्ति माने गये। इसी नाम के कारण उन्हें "गान्धी हत्याकान्ड", राजद्रोही व्यक्ति, महाराष्ट्रीय ब्राहमण आदि मुसीबतों से गुजरना पड़ा।

## विष्णु प्रभाकर की साहित्य साधना

विष्णुजी को साहित्य प्रेरणा बचपन में ही मिली। माँ ही उनकी पहला गुरू थी। उनकी माताजी ने दहेज में पुस्तकों का बक्सा लाया था। जिससे विष्णुजी को अक्षरज्ञान हुआ। बचपन से ही उनका माहोल ऐसा था कि उन्हें पुस्तकों में दिलचस्पी हुई। मामा के यहाँ "आर्य समाज का ग्रन्थालय" था। उन्होने आठवी कक्षा से लिखना आरम्भ किया। हालात से मजबूर होकर उन्हें लिखना पड़ा। जीवन के संघर्ष से बचने के लिए उन्हें लेखन का सहारा लेना पड़ा। प्रेमचन्दजी और बंगाली साहित्यकार शरतचन्द्र से उन्होंने प्रेरणा पायी है। बालसाहित्य, एकांकी, जीवनी, संस्करण, डायरी आदि विभिन्न विधाओं पर नियमित रूप से लिख रहे हैं। असल में उनके साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत जीवन है। विष्णु प्रभाकर साहित्यकार के दायित्व को सामाजिक दायित्व मानते हैं।

### 1· नाटकेतर साहित्य

कहानीकार के रूप में - विष्णुजी ने अपनी साहित्य साधना में कहानीकार के रूप में 16 कहानी संग्रहों का निर्माण किया है। आदि और जन्म 1945 , रहमान का बेटा 1947 , जिन्दगी के थपेडे 1952 , संघर्ष के बाद 1953 धरती अब भी घूम रही है 1970 , सफर के साथी 1960 , खण्डित पूजा 1960 सांचे और कला 1962 , मेरी तैतिस कहानियाँ 1967 , पूल टूटने से पहले 1977 मेरी प्रिय कहानियाँ 1970 , मेरा वतन 1980 , खिलौने 1981 , मेरी लोकप्रिय कहानियाँ 1982 , इक्यावन कहानियाँ 1983 , मेरी कहानियाँ 1984, मेरी कथा यात्रा 1984 , एक और कुन्ती 1985 , जिन्दगी एक रिहर्सल 1985 विष्णुजी असल में अपने आपको कहानीकार मानते हैं। उनकी कहानियाँ मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं।

### उपन्यासकार के रूप में

साहित्यकार के नाते विष्णु प्रभाकर के कुछ उपन्यास इस प्रकार हैं - ढलती रात 1951 , निशिकान्त 1955 , तट के बन्धन 1955 , स्वप्नमयी 1956

दर्पण का व्यक्ति 1968 , परछाईं 1968 , कोई तो 1987 , अपने उपन्यासों में विष्णुजी ने नियति और मुक्ति का चित्रण किया है।

## "जीवनी"कार के रूप में

विष्णु प्रभाकर को जीवनीकार के रूप में जो ख्याति मिली है शायद ही किसी और को मिली हो। "आवारा मसीहा" उनकी सर्वश्रेष्ठ जीवनी है। "आवारा मसीहा" एक ऐसी साधना है जो सदियों तक याद की जा सकती है। जाने अनजाने 1961 , कुछ शब्द कुछ रेखाएँ 1965 , आवारा मसीहा 1974 , अमर शहीद भगतसिंह 1976 , सरदार वल्लभ भाई पटेल 1976 , यादों की तीर्थ यात्रा 1981 , शुचि स्थिता ( संपा॰) 1982 , मेरे अग्रज मेरे मित 1983, समान्तर रेखाएँ 1984 , हम उनके ऋणी हैं 1994 , मेरे हम सफर 1995 राहे चलते-चलते 1995 , काका कालेलकर 1995 , स्वामी दयानंद सरस्वती शब्द और रेखाएँ 1989 , विष्णु प्रभाकर लघु जीवनियाँ 1990 आदि।

## यात्रा-वृत्त

विष्णुजी के अब तक पांच यात्रा वृत्त प्रकाशित हो चुके हैं - जमना, गंगा के नैहर में 1964 , हँसते निर्झर दहकती भट्टी 1966 , ज्योतिपुंज हिमालय 1982 तथा अभियान और यात्राएँ ( संपा॰)।

## बाल साहित्यकार के रूप में

हिन्दी बाल साहित्य को समृध्द करने का कार्य भी विष्णु प्रभाकरजी ने किया है। बच्चों के लिए 20 पुस्तकों का निर्माण किया है। सरल पंचतंत्र दो भाग , जब दीदी भूत बनी, तपोवन की कहानी, स्वराज्य की कहानी, घमण्ड का फल, मोतियों की खेती, हिरे की पहचान, पाप का घडा, गुडडीयाँ खो गयी। विष्णुजी ने कुछ बाल एकांकी भी लिखे हैं जो बच्चों के लिए विशेष प्रेरणादायी है - अभिनय बाल एकांकी, अभिनव एकांकी, हड़ताल, जादू की गाय, नूतन बाल एकांकी, कुन्ती के बेटे, स्वाधिनता संग्राम, बच्चों के प्रिय नाटककार। तथा जीवनी साहित्य - शरतचन्द्र चटोपाध्याय, बंकिम चन्द्र, सरदार वल्लभ भाई पटेल। अपनी बाल कथाओं से बच्चों को बोध देने का कार्य किया है।

## एकांकिकार के रूप में

श्रेष्ठ एकांकीकार के बीच में विष्णु प्रभाकरजी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। प्रभाकर माचवेजी ने उन्हें खुद नाटक लिखने की प्रेरणा दी। उनका पहला एकांकी संग्रह - इन्सान और अन्य एकांकी 1947 , अशोक और अन्य एकांकी 1956 प्रकाश और परछायी 1956 , बारह एकांकी 1958 , दस बजे रात 1959 ये रेखाएँ ये दायरे 1903 , ऊँचा पर्वत गहरा सागर 1966 , मेरे प्रिय एकांकी 1970 , नये एकांकी 1976 , हारे हुए लोग 1979 , मैं भी मानव हूँ 1982 , दृष्टि की खोज 1983 , मैं तुम्हें क्षमा करूंगा 1986 आदि एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपने परिवेश में जो पाया है वही एकांकियों द्वारा प्रस्तुत किया है। नारी के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा है। नारी उनका आदर्श है। उन्होंने अपनी एकांकियों में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

## नाटककार के रूप में

विष्णु प्रभाकरजी ने नाट्य साहित्य में विशेष मौलिकता दिखायी है। उनके नाटक श्रेष्ठ हैं। उनके नाटक रंगमंच, शैली और शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने हर तरह के नाटक लिखे हैं। अभी तक उनके 13 नाटक प्रस्तुत हो चुके हैं। नवप्रभात 1951 , समाधि 1952 , डॉक्टर 1991 , युगे युगे क्रांति 1966 , टूटते परिवेश 1974 , कुहासा और किरण 1975 , टगर 1986 , बन्दिनी 1979 ,साता के आरपार 1981 , अब और नही 1981 , श्वेतकमल 1984 , केरल का क्रान्तिकारी 1978 । विष्णुजी के तीन रूपान्तरित नाटक भी हैं -चन्द्रहार 1952 , होरी 1955 , सुनन्दा 1984 । विष्णुजी के नाटकों में जीवन का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। उनके नाटक जीवन के परिप्रेक्ष्य से चुने गये हैं । तभी तो कई बार रंगमंच पर खेले जाते हैं। हिन्दी साहित्य में विविध विधाओं में उनका श्रेष्ठ नाम नाटककार की हैसियत से है।

विष्णु प्रभाकर के नाटकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है[22]

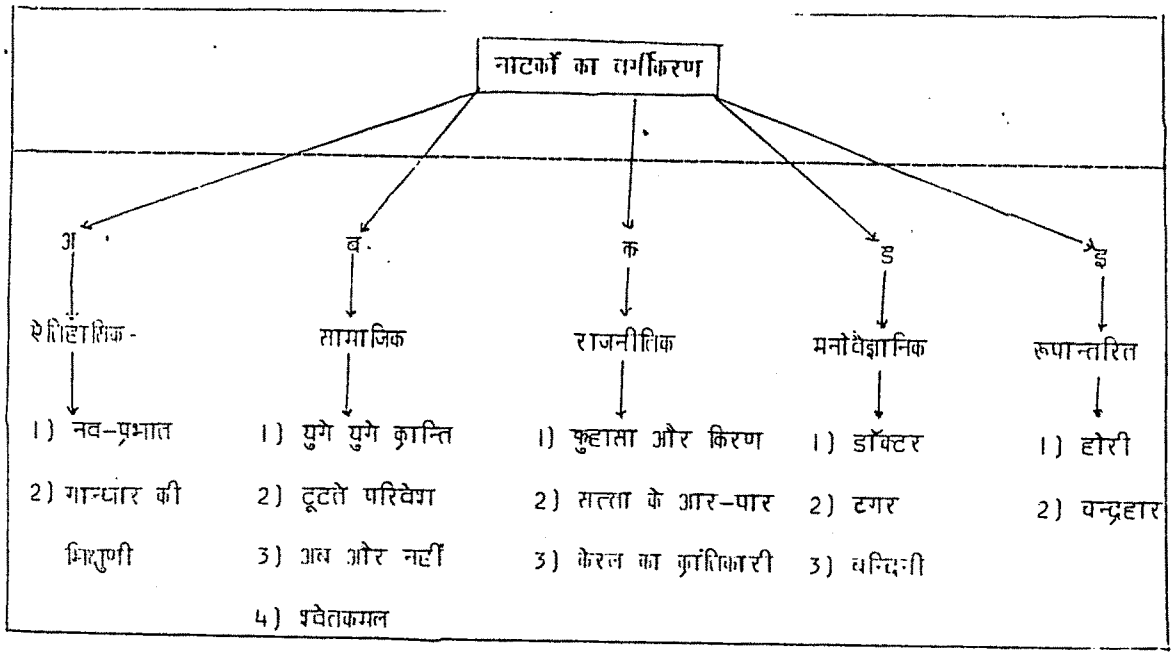


**ऐतिहासिक नाटक**

नवप्रभात (1951)- नवप्रभात नाटक में श्री विष्णु प्रभाकरजी ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथा के सहारे यह नाटक लिखा है। मानवता का टूटा हुआ चित्रण इस नाटक में मिलता है। युध्द की भयानकता इस नाटक में दिखाई देती है। सम्राट अशोक की कथावस्तु को लिया गया है। दो महायुध्दों से पीड़ित मानव का चित्रण इस नाटक में दिखाई देता है। कलिंग युध्द की क्रूरता व बर्बरता का चित्रण दिखाई देता है। अपनी स्वार्थ लिप्सा के कारण मानव क्या से क्या कर देता है यही दिखाई देता है। युध्द के बाद अशोक में परिवर्तन मिलता है। इस नाटक से विश्वबंधुत्व का संदेश मिलता है।

समाधि (1952) : विष्णु प्रभाकर के समाधि नाटक की कथावस्तू ऐतिहासिक है। देश में शान्ति स्थापित करने के लिए बालादित्य और यशोवर्मन का प्रयत्न जारी है पर देश में मौजूद राजनीतिज्ञों के कारण देश दुर्बल हो जाता है। संस्कृति विकृत व खोखली हो जाती है। ऐसी अवस्था में न राजा कुछ कर सकता है न पंचायत। राजा कायर होने के कारण मिहिर कुल के सम्राट और सरदार ने कठपुतली बनाया

है। "समाधि" नाटक में प्रसिध्द ज्योतिषी आर्यभट्ट और बारह मिहिर के नाम का उल्लेख मिलता है। बदले कि भावने में जलती एक स्त्री आनन्दी की यह कथा है। जिस सरदार ने उसकी इज्जत लूटी उसका वह कत्ल कर देती है। विष्णुजी ने इस कथा के माध्यम से गुप्तकालीन सम्राटों की पतन का कारण उनकी काला की तरफ देखने की दृष्टि को ही बताया है।

**सामाजिक नाटक**

**युगे युगे क्रान्ति** 1970 इस नाटक में विष्णुजी ने क्रान्तिका गतिशील रूप दिखाया है। क्रान्ति को सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। क्रान्ति आदि काल से लेकर आज तक निरंतर चली आ रही है। पुरानी रूढी से नयी रूढी का संघर्ष दिखाया है। इस नाटक में विष्णुजी विवाह के बारे में हमारे समाज में जो परम्पराएँ चिरकाल चली आ रही है, उसीको प्रस्तुत किया है। इस नाटक का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। शारदा श्री प्यारेलाल की पुत्री है वह पुरूषों के खिलाफ भाषण देती है। पुरुष उस पर व्यंग्य करते हैं - "खाक साहसी है। नारी को ऐसा साहस शोभा नहीं देता, राक्षस, दैत्य, दानव, क्या ये कम साहसी हैं ? नारी की शोभा कोमलता और सुन्दरता है, पौरुष और वाचालता नहीं है। हरे। हरे।[23] शारदा स्त्री की शक्ति के सामने हिमालय को भी तुछ मानती है। शारदा, विमल, सीमा, प्रदीप सभी एक दूसरे के आगे निकल जाने का प्रयत्न करते हैं। पर वे इतिहास बनकर रह जाते हैं। अनिरुद्ध और रीता उनसे भी आगे जाकर फ्री सेक्स में विश्वास रखते हैं। प्रत्येक पात्र अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। विष्णुजी ने इस नाटक में जीवन के सत्य को उजागर किया है। इस नाटक में बदलते हुए मूल्यों को कुशलता से उजागर किया है।

**अब और नही (1981)** : यह नाटक 1981 में प्रथम प्रकाशित हुआ। तीन अंकी इस नाटक में नारी के शोषण की दर्दभरी दास्तान है। नारी पीड़ा का भाण्डार है। नारी शोषण का इतिहास इस नाटक में प्रस्तुत है। राजनीति से लेकर धर्म तक नारी की आसुओं की दास्तान मिलती है। वीरेन्द्र प्रताप और शान्ता दोनों पति-पत्नी हैं। शान्ता को सितार बजाने का शौक है। उसके सितार बजाने और

चित्र खींचने के शौक पर पति ने बंधन लगया दिए हैं। शान्ता के सुनहरे संसार के स्वप्न बिखर कर रहते हैं। वीरेन्द्र चाहता है कि शान्ता सिर्फ उसीके पति में खोयी रहे। शान्ता का जीवन दबावग्रस्त हो जाता है। वह अपने पति द्वारा डाले गये बन्धनों से मुक्त होना चाहती थी। आखिर वह आत्महत्या कर लेती है।

**टूटते परिवेश** (1974) : विष्णुजी का यह नाटक श्रेष्ठ नाटक है। यह नाटक विष्णुजी की मानसिकता का प्रतिक है। मध्यमवर्गीय परिवार की यह कहानी है। पुरानी पीढ़ी के संस्कार नयी पीढ़ी स्वीकार नहीं करती। टूटते परिवेश का यही वातावरण है। नयी और पुरानी पीढ़ी एक ही छत के नीचे रहती है। गृहस्वामी विश्वजीत है जो अपने असूलों पे अड़े हैं। नयी पीढ़ी अपने अपने मार्ग पर चलना चाहती है। घर में हर एक को एक दूसरे से शिकायत है। विश्वजीत और उनकी पत्नी सबको एक छत के नीचे लाने का प्रयत्न करते हैं। लक्ष्मीपूजन के दिन घर में कोई भी व्यक्ति वक्त पर नहीं आता। उनकी बेटी मनीषा एक प्रोफेसर से शादी करके रफ्फूचक्कर हो जाती है। विवेक घर से नफरत करता है। नाटक में व्यक्तियों का संघर्ष न दिखाकर मान्यताओं और मूल्यों का संघर्ष दिखायी देता है। दीप्ति हॉस्टेल जाकर रहती है। घर के सब व्यक्तियों के बिखरने के बाद विश्वजीत भी टूट जाता है। गृहलक्ष्मी करूणा इस परिस्थिति से मुकाबला करती दिखायी देती है। वह अपनी ओर से बच्चों को मुक्त करती है। यह नाटक आधुनिकता पर कड़ा व्यंग्य करता है। विष्णुजी का इस नाटक का उद्देश्य - स्वातंत्र्य का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं, त्याग में मानवीय गुण वास करते हैं, स्वार्थ में नहीं। यही बताना है। विश्वजीत का एक परिवार का स्वप्न आज के युग की आवश्यकता है।

**श्वेत कमल** (1948) : घर के बाहर का वातावरण स्त्री के लिए समस्या खड़ा करता है। "श्वेत कमल" में भी घर के बाहर एककुमारी स्त्री किन समस्याओं से जूझती है जिसका चित्रण इस नाटक में किया गया है। चौदह सौ साल पहले स्त्री के प्रति जो परिस्थिति समाज में थी वही आज भी है आज भी स्त्री पर बलात्कार होते हैं, आज भी वह आतंकित है। विष्णुजी कहते हैं - "जीवन मूल्य बदलते जरूर हैं। भले ही बदलाव हमें रसातल की ओर ले गया है। बदलाव किसी दबाव

के कारण आता है। कुछ दबाव ऐसे भी हैं जिनके कारण नारी मुक्ति के इस युग में वह असहाय बनकर रह गयी है। उन दबावों में एक दबाव आर्थिक भी है।"[24] घर में पिता नहीं, भाई नहीं, तो घर की सारी जिम्मेदारी बेटी पर आ पड़ती है। वह काम की खोज में घर से निकलती है। समाज के दरिन्द्र उसे निगलने के लिए आतुर हैं। अपना दिल जलाकर भी वह घर के लोगों को अपना लेती है। ऐसी असहाय नारी का प्रतिक श्वेत कमल की नायिका है। बिन्दु घर की बड़ी बेटी है, महँगाई के जमाने में उसे काम करना जरूरी होता है, तब वह दफ्तर में नौकरी करने लगती है।उसकी बहन भोली भाली रंजना एक आदमी के प्यार में पागल होकर घर से भाग जाती है। वह प्रेमी ही उसे वेश्या बनाकर बेचना चाहता है। तब वह आत्महत्या करती है। लेकिन लोगों की नजरों में वह जिन्दा है और परदेस में नर्स है। बिन्दु की और दो बहने नीलिमा और प्रतिमा, बूढी माँ है। बिन्दु जहाँ काम करती है वहाँ का मालिक उसके पीछे पड़ा है। बिन्दु अपने आदर्शों के खातिर इन दरिन्दों से बचने के लिए नौकरी से इस्तीफा दे देती है। वह विकास नाम के युवक से प्यार करती है पर घर की जिम्मेदारियों को देखकर शादी नहीं कर सकती। जानबूझकर कुँवारी रहना पसन्द करती है। सभी दृष्टि से यह नाटक सफल है।

**राजनीतिक नाटक**

**कुटासा और किरण** (1975) : यह नाटक सत्य घटना पर आधारित है। समस्याप्रधान नाटक है। स्वाधीन भारत की सामाजिक और राजनीतिक जीवन का चित्रण इसमें मिलता है। यह नाटक तीनों अंकों में और छह भागों में दृश्यबध्द है। कृष्ण चैतन्य कि कहानी यथार्थ और कल्पना पर आधारित है। अमूल्य और सेक्रेटरी सुनन्दा कृष्णचैतन्य की षष्टिपूर्ति पर बधायी देने आये हैं। कृष्णचैतन्य के मन में अमूल्य के प्रति भय की भावना है। अमूल्य कभी भी कृष्णचैतन्य के लिए खतरा बन सकता है। कृष्णचैतन्य अमूल्य के प्रति गहरी साजिश करता है। उसे बदनाम करने के लिए चोरी का इल्जाम देकर उसे जेल भेजता है। कृष्णचैतन्य की पत्नी गायत्री देवी आदर्श स्त्री है। कृष्णचैतन्य कि काली करतुतों को जानकर वह मायके चली जाती है। मालती एक बदनसीब नारी है उसका पति भारत के स्वतंत्र संग्राम में

भाग लेकर जेल चला जाता है।

दूसरे अंक में सुनन्दा और प्रभा दोनों भ्रष्टाचारी नेता का भाण्डा फोड देती हैं। सुनन्दा कृष्णचैतन्य की सही कहानी पत्रों में प्रकाशित करती है। इस दरम्यान गायत्री को ट्रक कुचल देता है तभी कृष्णचैतन्य को अपराध भावना ग्रस लेती है। गायत्री के फोटो के सामने वह अपना अपराध कबूल कर लेता है। इस मुख्य कथा के साथ एक गौण कथा भी है। मालती की दर्दभरी कहानी नाटक को उभार लेती है। इस नाटक में स्वतंत्रता के बाद भारत में जो भ्रष्टाचार फैल गया, उसका चित्रण पाया जाता है। यहाँ समाज में फैले भ्रष्टाचार के कुहासे को खत्म करने कि अपेक्षा दिखाई देती है। संवादों की निर्मिती कुशल है।

**साता के आर-पार** (1981) : श्री विष्णुजी इस नाटक से खुद प्रभावित हैं। साहित्यिक व्यवस्थाओं के बावजूद भी उन्होंने "साता के आरपार" लिखने को प्रधानता दी है। 22 फरवरी 1981 को भगवान बाहुबली की सहस्त्राब्दी महोत्सव एवं महाराज्याभिषेक के अवसर पर इस नाटक का प्रकाशन हो यही उनकी कामना थी। इस उद्देश्य से विष्णुजी ने "साता के आर-पार" का सृजन किया है।

कर्नाटक में श्रवणबेलगोल तीर्थ विन्धगिरी पहाडी पर स्थित संसार की सबसे ऊंची और भारतीय कला की भव्यता की प्रतिमा 57 फूट ऊंची भगवान गोमटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा विद्यमान है। बाहुबली ऋषभदेव आदिनाथ के द्वितीय पुत्र थे। इनके जेष्ठ पुत्र भरत है जिसके नाम से भारत देश भारतवर्ष कहलाता है। इस नाटक में बाहुबली और भरत के द्वंद युध्द कि कथा प्रस्तुत की गयी है। भरत चक्रवर्ती बनने के लिए दिग्विजय करता है पर बाहुबली के साथ ही युध्द नहीं करता। जब उसका चक्र अटक जाता है तो उसे यह बात अच्छी नहीं लगती और वह बाहुबली को भी युध्द का आवाहन करता है। दोनो भाईयों में दृष्टियुध्द, जलयुध्द, मल्लयुध्द होता है। पर धर्मयुध्द में बाहुबली की जीत होती है। इतने में धर्मयुध्द के नियम तोड़कर भरत हाथियार उठाता है। भाई की यही नीति देखकर बाहुबली सत्ता का त्याग करके तप करने लगता है। अहंकार का त्याग करने पर

ही उसे केवल ज्ञान प्राप्त होता है। साता के आर-पार नाटक तीन अंको में प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक मानवीय धरातल पर लिखा गया है।

**केरल का क्रान्तिकारी (1981) :**

केरल का क्रान्तिकारी नाटक लिखने कि प्रेरणा विष्णुजी को 1950 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को मध्य नजर रखते हुए विष्णुजी ने छः रूपक आकाशवाणी के लिए लिखे थे। तब उन्हें यह मालूम हुआ कि भारत की आजादी के लिए न जाने कितने लोगों ने आत्मसमर्पन कर दिया। तभी सन 1809 में केरल के एक नेता जिसने ब्रिटीशों से लोटा लिया उस व्यक्ति की नाम "वेलुतम्पी" दलवा है। केरल के क्रान्तिकारी का नायक है। उनकी शौर्य गाथा से उनके महाराज धर्मराज ने तालुकेदार बनाया था। ब्रिटीश सरकार ने प्रजा पर अत्याचार किये। जयन्तन ने दलवा से तीन हजार रूपये रिश्वत माँगी पर दलवा ने देने से इन्कार कर दिया और क्रान्ति के लिए तैय्यार हो गया। देशभक्ति में उसका सहयोग अम्मुकुट्टी ने दिया। अन्त में अपने देश के लिए कल्पना का सहारा लिया गया है। कृत्रिम पात्रों में दलवा कि प्रेमिका अम्मुकुट्टि है। केरल का क्रान्तिकारी एक सफल सुन्दर राजनीति नाटक है।

**मनोवैज्ञानिक नाटक :**

**डॉक्टर (1956) :** साहित्य मानव की विविधोन्मुखी भावनाओं की अभिव्यक्ति है। भाव साहित्य की प्रधान आधार शिला है। मानव के विविध भावों, विचारों और कल्पनाओं से ही साहित्य सम्पन्न होता है, इसलिए साहित्य और मानव का घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य के भाव और विचार तथा उसकी कल्पनाएँ भी बडी विचित्र और अनोखी हुआ करती है। साहित्य मनुष्य की इन्हीं विचित्र भावों, विचारों, तथा कल्पनाओं का व्यक्त स्वरूप है।

विष्णुजी का डॉक्टर नाटक स्त्री पात्र प्रधान नाटक है। एक ऐसी नारी पर आधारित है जिसे पति ने बिना किसी वजह त्याग दिया है। अनीला के मनोव्यापार पर आधारित यह नाटक है। अनीला का ही पूर्वाश्रमी का नाम मधूलक्ष्मी है। सतीशचन्द्र

एक इंजिनिअर है। एक सरल प्राण पत्नी का सतीशचन्द्र त्याग करता है।सिर्फ वह पढी-लिखी नहीं है, गवार हैं इसी वजहर से उसे छोड़ देता है। मधुलक्ष्मी असहाय अवस्था में भाई के यहाँ आती है। छोटी बच्ची शशी को अपने साथ हालत के थपेडे खाने के लिए लाती है। वह अपने पुराने नाम से नफरत करती है। आगे पढ़-लिखकर डॉक्टर बन जाती है। प्रतिशोध कि भावना को दबाकर उदात्तीकरण का सहारा लेती है।

डॉक्टर बनने के बाद एक दिन सतीशचन्द्र शर्मा अपनी दूसरी पत्नी को लेकर अनीता के अस्पताल में दाखिल करता है। अनीता को जब मालूम होता है कि मरीजा ही उसकी सौत है तो उसकी प्रतिशोध कि भावना भड़क उठती है - उसके मन में संघर्ष उठता है, वह दादा से कहती है - "लेकिन यही स्नेह जब उबलता है तो नागिन का जहर उसके सामने चन्दा की शीतलता बन जाता है। आप यह नहीं जानते। जानते होते तो कभी ऐसा नहीं करते। ओह पन्द्रह वर्ष तक आप तेरे सम्बल बने रहे पर संकट के समय आपने मुझे धोखा दिया। सागर की तूफानी लहरों में फेंक दिया। आपने मूझे.....।[25] विष्णुजी ने इस नाटक में अनीला के उदात्तीकरण, प्रतिशोध, वात्सल्य, आत्मनियंत्रण, प्रेम, घृणा, दया आदि भावों को प्रस्तुत किया है। पुरूष पात्रों में सतीशचन्द्र शर्मा मुख्य पात्र है। जो बाहरी वैभव और विलासिता भरी दुनिया से आकृष्ट होकर नारी से कुछ अपेक्षाएँ रखता है। अनीला का पात्र परित्यकता होकर भी अपना उत्सर्ग खुद करती है। पति के त्याग के बाद भी उसकी हितैषिणी सिध्द होती है। डॉ.सईदा, केशव उसके सहयोगी डाक्टर हैं। अनीला की भावनाओं को उजागर करने के लिए ये पात्र आवश्यक हैं। केशव और दादा सफल मनोविश्लेषक हैं। कथावस्तु पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

मधुलक्ष्मी की क्षतिपूर्ति की भावना, मरीजा को अस्पताल में दाखिल न करने का निश्चय करके दाखिल कर लेना, ऑपरेशन करने की इच्छा न होकर भी ऑपरेशन करना, मरीजा को मार डालने की इच्छा रखकर भी उसे जीवनदान देना इन भावनाओं में अनीला का मानसिक संघर्ष चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। ये

घटनाएँ मनोवैज्ञानिक धरातल पर महत्व रखती है। नीरू का पात्र पागल है, पर भाषा पर प्रभुत्व है वक्तव्य से समझदार लगती है। गोपाल सतीशचन्द्र और मरीजा का बेटा है जिसके कारण अनीला में वात्सल्य पैदा होता है। मातृत्व की भावना जग जाती है। संपूर्ण नाटक तीन अंकों में विभाजित है। प्रथम और द्वितीय अंक में दो-दो दृश्य हैं तथा तृतीय अंक में एकही दृश्य है। इसे नायिका प्रधान मनोवैज्ञानिक नाटक कहा जा सकता है। इस नाट्यकृति के जरिये विष्णुजी ने हिन्दी नाटक साहित्य में मनोवैज्ञानिक नाटकों की कमी को भर दिया है।

'टगर' (1986) : यह नाटक भी मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखा गया है। 'टगर' एक ऐसी नारी है जो पुरुष द्वारा निरस्कृत होने पर अपने जीवन में आनेवाले हर पुरुष का बदला लेना चाहती है। हर पुरुष में वह अपने पति शेखर को देखती है। उससे बदला लेना चाहती है। वह एक जिद्दी नारी है। प्रतिशोध की आग में जल रही है। बदले की आग में वह इतनी जल उठी है, पागल हो गयी है, उसे खुद की परवाह नहीं रही - "सोचा था पुरुष जाति से बदला लूँगी। उसने मुझे एक बार छोड़ा है, मैं बार -बार पुरुषों को छोड़ूंगी।"[26]

शेखर ने टगर को इसलिए छोडा था कि वह आधुनिका नहीं है। शेखर स्वयं लेखक है और चाहता है कि पत्नी भी अपने साथ साहित्य की बाते करे। साधारण नारी को पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। टगर एक भोली भाली लड़की थी पर अब प्रतिशोध ने उसे क्या से क्या .बना दिया है। अब वह अपनी हद से गिर चुकी है। वह हर पुरुष को अपनी ऊंगलियों पर नचाना चाहती है। अपने अतीत को भूलाकर ठाकूर, नाजिम, माथूर जैसे पुरुषों को अपने मोहजाल में फँसा लेती है। लेकिन इन पुरुषों को समाप्त करते समय वह खुद भी जलती है। आखिर में वह हार जाती है ..."अपने ही बिछाये जाल में फंस गयी हूँ। यह खेल मात्र एक दंभ है, एक छल। नहीं, यह खेल मैं अब और न खेल सकूंगी।"[27] टगर इस नाटक कि नायिका है। विमला, ठाकुर, डॉक्टर, नाजिम, माथुर सब पात्र उसके इर्द गिर्द घूमते नजर आते हैं। जिनमें अनेक मनोविकार, मनोविकृतियाँ पायी जाती हैं। 'टगर' नाटक चरित्र प्रधान तथा घटनाप्रधान है। विष्णुजी ने मनुष्य

की मानसिकता का पूरा अध्ययन किया है। परित्यक्ता स्त्री के अन्तर्मन की पीड़ा का सही सही अनुमान यहाँ दिखायी देता है। मन की शान्ति के लिए टगर दर दर भटकती रहती है। पर आखिर एक हारी हुई, टूटी हुई नारी के रूप में हमारे सामने आती है। पर इतना सब होने के बाद भी वह अपने मन से पति शेखर को निकाल नहीं पाती। वह अब भी उसे प्यार करती है। नारी मन की भावनाओं का इतना सुन्दर चित्रण विष्णुजी ने इस नाट्य कृति में किया है कि पाठक और रसिक दर्शक भावविभोर हो जाते हैं।

**बन्दिनी** (1979) : बन्दिनी नाटक के बारे में उस नाटक की भूमिका में विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि यह नाटक उनकी कल्पना की उपज नहीं है बल्कि बंगाल के सुप्रसिध्द कथाकार श्री॰प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की "देवी" कहानी पर लिखा गया है। श्री मुखोपाध्याय ने देवी गल्फ का आख्यान भाग रवीन्द्र ठाकुर ने उन्हें दान दिया था ऐसा भी कहा है। यद्यपि बन्दिनी नाटक देवी कहानी को आधार मानकर लिखा गया है, फिर भी नाटककार विष्णु प्रभाकर ने उसके वस्तुविन्यास और रंगमंच की दृष्टि से मंचीय बनाने हेतु काफी परिवर्तन और विस्तार किया है जो नाटक के तीन अंकों में समादृत है। प्रस्तुत नाटक विष्णु प्रभाकर ने श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ओर रवीन्द्रनाथ ठाकुर को समर्पित किया है। विष्णुजी कहते हैं - "महानगरों के कोनों में अपने समस्त अन्धविश्वासों के साथ गांव अब भी बसते हैं। मैं एक विशेष वर्ग के व्यक्तियों के बीच में रहता हूँ। समय - समय पर देवी माता अब भी चमत्कार दिखाती है। जीभ काटकर देवी की प्रतिमा पर चढानेकी घटना का मैं साक्षी हूँ। नरबलि अभी भी नामशेष नहीं हो गई है। इस प्रकार की घटनाओं की चर्चा जब-तब समाचार पत्रों में आती रहती है।"[28]

विष्णु प्रभाकरजी की यह नाट्यकृति "बन्दिनी" 1979 में प्रकाशित हुई। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु अंधविवास पर आधारित है। आज भी हम देखते हैं कि बीसवीं सदी में मानव ने प्रचुर मात्रा में प्रगति की है फिर भी अन्धविश्वास की घटनाएँ आज भी घटित रही दीखती है। प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हुए भी कहीं-न-कहीं मनुष्य अंधविश्वास से भी घिरा हुआ दिखाई देता है।

कालीनाथराय भी जमीदार हैं वे काली माता के भक्त हैं। देवी देवताओं पर अंधविश्वास रखते हैं। एक रात कालीनाथ के सपने में देवी माता आती है और उन्हें कहती है कि मैं तुम्हारी छोटी बहू के रूप में तुम्हारे घर में मोजूद हूँ। उसीकी पूजा करो1 तब से कालीनाथ राय अपनी छोटी बहू को देवी माँ मानकर उसे पूजागृह में बन्द करते हैं। उसे किसीसे मिलने पर पाबन्दी लगायी जाती है। उमा कि भावनाओं का खण्डन किया जाता है। गाँव के सब लोगों का दुख दर्द निवारण करने का काम उमा करती है। उमा और कालीनाथ राय कि अन्धविश्वास के कारण सारे परिवार का विनाश हो जाता है। अन्धविश्वास के कारण उमा और सुरेन्द्र का संसार उजड़ जाता है। अन्धविश्वास के कारण सावित्री का बेटा अनु मर जाता है। वह तडपकर कहती है -"मेरा बच्चा जा रहा है और मैं चुप हो जाऊं? नहीं, नही मैं चीखूंगी, चिल्लाऊंगी, पुकार पुकारकर कहूंगी, यह देवी नहीं है।"[29] अनु के मरने के बाद उमा शक्तिहीन हो जाती है उसे अपने आप पर क्रोध आता है। उसे मालूम होता हैं किकालीनाथ का स्वप्न झूठा था। उमा पश्चाताप दग्ध हो जाती है और प्रायश्चित कर लेना चाहती है वह गंगा में डूबकी लगाकर आत्महत्या करती है।

विष्णुजी ने बड़ी सजगता से इस कथावस्तु को प्रस्तुत किया है। अन्धविश्वास पर गहरी चोट करनेवाली नाट्यकृति है। मानव के दोषों को भी विष्णु प्रभाकर ने भावुकता से हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

विष्णुजी के शब्दों में - "आलस्य और अज्ञान कभी साधना के आधार नहीं रहे हैं। रह भी नहीं सकते। यह तो पलायन से भी घृणीत पाप है नियति का यह कैसा व्यंग्य है कि अंतरिक्ष के युग में भी अंधःविश्वास मनुष्य को उसी तरह दबोचे हुए हैं।"[30] इसमें संदेह नहीं कि अन्धविश्वास अज्ञान का ही प्रतिरूप है जो मानव के सुंदर, स्वस्थ जीवन को इतस्ततः कर देता है।

**रूपान्तरित नाटक**

**होरी** : विष्णु प्रभाकरजी का नाटक "होरी" सुप्रसिध्द उपन्यासकार "प्रेमचन्द" के उपन्यास "गोदान" का रूपान्तर है। "गोदान" प्रेमचंद की श्रेष्ठतम उपन्यास

है। गोदान में अभावग्रस्त भारतीय किसान की जीवनगाथा का चित्रण है। उपन्यास की अपनी सीमाएँ होती है। इसी कारण जीवन की नागरी सभ्यता आदि को रूपान्तर में विष्णुजी ने नहीं लिखा है। होरी में ग्रामीण दुर्बलताओं को लिया गया है। देहाती जीवन का वास्तविक चित्रण इसमें मिलता है। इसमें बदनसीब किसान की दर्दनाक कहानी है। मन से बड़ा दयालू, उदार होकर भी नाटक का नायक, दरिद्रता के कारण विवश है। किसान को विरासत में जादा से जादा क्या मिल सकता है यही इस नाटक में प्रस्तुत किया है। होरी की पत्नी धनिया भी सर्वश्रेष्ठ पात्र है। होरी अपनी जमीन और घर को बचाने के लिए अपनी बली देता है। अन्त में लू लगले से वह मर जाता है। धनीया साहसी नारी है। पात्रों की दृष्टि से "होरी" नाटक बहुत ऊंचा है। यह सफल रूपान्तरित तथा मंचीय नाटक है।

**चन्द्रहार** (1952): यह नाटक भी प्रेमचन्दजी के प्रसिध्द उपन्यास "गबन" का नाट्य रूपान्तर है। विष्णु प्रभाकरजी ने इस उपन्यास का नाट्य रूपान्तर 1952 में किया था। इस उपन्यास से विष्णुजी ने केवल नाट्योपयोगी सामग्री ही ली है। लेकिन कही भी मूल उपन्यास के पात्रों पर अन्याय नहीं होने दिया है। कथावस्तु पात्र और संवादों को सुरक्षित रखा है। यह नाटक रूपान्तरित होकर भी मौलिक है। प्रेम और रामनाथ के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण को बड़े ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कहानी को बड़े ही कलात्मकता से और कुशलता के साथ विष्णु प्रभाकरजी ने प्रस्तुत नाटक लिखा है। नाटक पढ़ते समय कहीं भी रसात्मकता की कमी महसूस नहीं होती। रंगमंच की दृष्टि से भी यह नाट्यकृति सफल नाट्यकृति है। "चन्द्रहार" विष्णुजी की सफल रूपान्तरित नाट्यकृति है।

श्री विष्णु प्रभाकरजी की बहुमुखी साहित्य साधना को देखकर डॉ॰विजयेन्द्र स्नातक ने उचित ही लिखा है - "कलम स्वावलम्बन का मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में प्रतिनिधित्व करती है, कलम पुरुषार्थ का भी प्रतीक है और स्वावलम्बन का बिम्ब भी। विष्णुजी, पुरुषार्थ और स्वावलंबन के साक्षात मूर्तरूप हैं। उनकी साठ पुस्तके अमूर्त अध्ययन और अध्यवसाय की मूर्त प्रतिमाएँ हैं। विष्णुजी ने जब कलम पकड़ी थी तब प्रेमचन्द और शरदचंद्र जैसे कथाशिल्पी ही उनके पथः प्रदर्शक

12771

थे। ज्यों ज्यों पथ प्रशस्त होता गया साहित्य की अन्य विधाएँ भी उनके रचना संसार में समाविष्ट होती गई और आज कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्करण, निबंध, यात्रावृत्त, बाल साहित्य आदि विधाओं में उनका प्रदेश लक्षित किया जा सकता है।

**मान-सम्मान**

श्री विष्णु प्रभाकर हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न लेखक हैं उनकी साहित्य साधना उनके संस्कृति संपन्न व्यक्तित्व की तथा आदर्श और यथार्थ की कुंजी है। मानव जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोन विधायक है, मानवतावादी है। अपनी कठोर साहित्य-साधना के रूप में कार्यरत होने से और समाज के सम्मुख एक-से-बढकर एक श्रेष्ठ कृतियों को सृजन कर उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्री वृध्दि की है। उनके साहित्य साधना अनन्य साधारण हैं और इसी उपलक्ष में विविध शैक्षणिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं ने विष्णु प्रभाकरजी को अनेक पुरस्कार, पदक प्रदान कर सम्मानित किया है। यथा -

**सम्मान**

**पुरस्कार** -

| | | |
|---|---|---|
| 1· स्वप्नमयी | 500·00 | उत्तर प्रदेश |
| 2· संघर्ष के बाद | 500·00 | उत्तर प्रदेश |
| 3· धरती अब भी घूम रही है। | 350·00 | उत्तर प्रदेश |
| 4· कुछ शब्द कुछ रेखाएँ | 500·00 | उत्तर प्रदेश |
| 5· आवारा मसीहा | 3000·00 | उत्तर प्रदेश |
| 6· बाजी प्रभु देशपांडे | 500·00 | भारत सरकार प्रौढ शिक्षा |
| 7· शंकराचार्य | 500·00 | -"- |
| 8· हमारे पड़ोसी | 500·00 | -"- |
| 9· पहला सुख निरोगी काया। | 200·00 | दिल्ली राज्य बच्चों की पुस्तकें |

**कहानियाँ**

1· शरीर से परे 500·00 अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता

2· गृहस्थी 350·00 --"--

**नाटक**

1· नवप्रभात-महाराष्ट्र प्रशासन - दो बार

**विशेष पुरस्कार**

1· आवारा मसीहा 1000·00 साहित्य कला परिषद, दिल्ली

2· पाब्लो नेरूदा सम्मानम प्रशस्तिपत्र - इंडियन राइटर्स एसोसिएशन

3· सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार - 10,000·00

कुल पुरस्कारों की धनराशि - 18,400·00 रूपये

4· नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी - ताम्रपत्र

5· इण्टरनेशनल ल्यू मेनिस्ट्स अवार्ड - 1975 इण्टरनेशनल ल्यू मेनिस्ट्स, कमल पुष, सोसायटी इण्डिया नई दिल्ली।

**संस्थाएँ**

अध्यक्ष भारतीय लेखक संघ, दिल्ली आर्य समाज हिसार में अनेक वर्षों तक कार्यसमिति के सदस्य रहे।

**सदस्य -**

1· आल इण्डिया पी·ई·एन·बम्बई

2· प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली·

3· राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली

4· दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, उच्च शिक्षा समिती मद्रास

5· इंडियन कौन्सिल ऑफ वर्ल्ड एफ्येर्स, नई दिलली

6· नेशनल कमिटी विश्व हिन्दी सम्मेलन

7· मंत्री क्लब, कैलास, आगरा

8· कामायन, जयपुर।

**विशेष प्रतिनिधित्व**

1· मास्को शान्ति सम्मेलन 1962

हिन्दी साहित्य सम्मेलन वर्मा, रंगून 1960 उद्घाटन

2· प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर, 1975

3· द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन, मारीशस, 1977

आज विष्णु प्रभाकरजी की आयु लगभग 84 वर्ष है। फिर भी वे अपने सांस्कृतिक चिंतन और साहित्य साधना के क्षेत्र में बड़ी ताजगी के साथ कार्यरत हैं। "उनके चेहरे पर बुढापा नहीं है, उनकी मुसकान में कहीं झूर्रियाँ नहीं है, अपने बचपन को अपने चेहरे पर साथ लिए घूते हैं। मुख पर जो चमक है उसे शरीर के साथ साथ आन्तरिक शक्तियों का तेजोदीप भी कहा जा सकता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का शक्तिशाली दूध, घी और मक्खन खाया हुआ शरीर है, पर महाभारत के मानस का मथा हुआ नवनीत थी , शंकाओं, संदेहों और चिन्ताओं को पार करता हुआ उनके जीवन में सादगी का लगातार कर्म और आनन्द बना हुआ है।"[33] इसमें सन्देह नहीं कि श्री विष्णु प्रभाक अपनी साहित्य साधना में निरंतर जुड़े रहे हैं। उनकी साहित्य साधना की मनोभूमिक मानवतावाद है और उनका साहित्य मानव मन के विभिन्न आयामों से सम्पृक्त है। उनकी नाट्य-साहित्य साधना में मानव मन के अन्तर्मन की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है।

**अध्ययन प्रणाली**

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर निर्वाचित लघुशोध-प्रबंध की अध्ययन की दिशाएँ इस प्रकार बतायी जा सकती है -

1· मनोविकार-परक अध्ययन

2· मनोविकृति-परक अध्ययन

3· चरित्र-विकृति तथा खण्डित व्यक्तित्वपरक अध्ययन

4· शिल्प और रंगमंचीय बोधपरक अध्ययन

5· समन्वित मूल्यांकन।

श्री विष्णु प्रभाकर` तीन मनोवैज्ञानिक नाटकों - डॉक्टर, टगर और बन्दिनी को परिलक्षित कर उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना हमें अभिप्रेत है।

## नि ष्क र्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है -

1· नाटक साहित्य की अन्य विधाओं (काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी इत्यादि) की अपेक्षा संप्रेषण तथा प्रभान्वीति का एक प्रबल माध्यम है जिसको रंगमंच का वरदान प्राप्त हुआ है।

2· नाटक और मनोविज्ञान का घनिष्ट सम्बन्ध है। क्योंकि मानव मन के विभिन्न क्रिया-व्यापारों का यथार्थ चित्रण नाटक में पाया जाता है।

3· मानव में निहित विभिन्न मनोविकारों, मनोविकृतियों, रक्षायुक्तियों, विकृत-चरित्र तथा खण्डित व्यक्तित्व का चित्रण नाटक में नाटककार अपनी अनुभवशक्ति अनुभूति प्रवणता तथा प्रतिभा के द्वारा व्यक्त करता है।

4· नाटक रंगमंचित होने के कारण मानव मन के विविध क्रिया व्यापार दर्शक रंगशाला में देख सकता है।

5· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककार में विष्णु प्रभाकर का महत्वपूर्ण योगदान है। वे हिन्दी के एक सफल मनोवैज्ञानिक नाटककार हैं। उनके प्रमुख मनोवैज्ञानिक नाटक "डॉक्टर", "बन्दिनी", "टगर" जिनका विवेचन, विश्लेषण अगले अध्यायों में करना शोध-छात्रा का उद्देश्य है।

## सं द र्भ

1· नाट्यशास्त्र : भरतमुनि सम्पा· एवं व्याख्याकार श्री·बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, प्र·28, प्र·वि·सं·2029

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।" 1-117

2· हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच - डॉ·केदारनाथ सिंह, पृ·44, प्र·संस्क·1985 ई·

3· मानक हिन्दी कोश (चतुर्थ खण्ड) - प्र·सम्पा· रामचन्द्र वर्मा, पृ·454, प्र·संस्क·1965 ई॥

4· रंगमंच : सिध्दान्त और व्यवहार - डॉ·अज्ञात, पृ·14, संस्क·अनुल्लेख्य

5· नाटक और रंगमंच की भूमिका - डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल, पृ·12-14, संस्क·1974 ई·

6· नाट्य और नाटक - कुँवरजी अग्रवाल, पृ·16, प्र·संस्क·1990 ई·

7· लक्ष्मीनारायण लाल का रंगदर्शन - डॉ·सुभाष भाटिया, पृ·260॥ प्र·संस्क· 1990-91, (डॉ·लाल के साक्षात्कार से उद्धृत)

8· संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, पृ·771, द्वितीय संस्क·1969 ई·

9· डॉ·देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ·2, द्वि·सं·1963

10· The Study of Mental Life - James Drever, P.2 -
'Phychology is the positve science which studies the behaviour of man & animals, so far as the behaviour is regarded as an experience of that inner life or thought & feelings which we call mental life'.

11· Educational Psychology - Charles E. Skinner, P. 11, 1956
'Psychology deals with response to any & every kind of situations that life presents. By response or behaviour is meant all forms of processes-adjustment, activities and expression of the organism'.

12· The Phycha-dynamics of Abnormal Behaviour-J.F.Brown P.165, 1940
'... by the dynamic aspects of the self, Frend means the agents through which conflict arising in the instincts are worked out'.

13· The Physcho-dynamics of Abnormal Behaviour -J.F.Brow P. 222, 1940

14· सामन्य मनोविज्ञान, डॉ·एस·एस·माथुर, पृ·220-221, संस्क·1982 ई·

15· चिन्तामणि पहला भाग , रामचन्द्र शुक्ल, पृ·1, संस्क·1965 ई·

16· The Physcho-dynamics of Abnormal Behaviour - J.R. Brown, P. , 1940

17· Personality : A Psychological Interpretation H.W. Allport, P. 3rd Edition 1971.
'Personality is the dynamic organization with the individual of those psycho-physical system that determine his unique, adjustment to the environment'.

18· कलाकार का सत्य : विष्णु प्रभाकर, पृ·173, प्र·संस्क·1991 ई·

19· वही , पृ·19

20· लोकायती वैष्णव विष्णु प्रभाकर - धर्मवीर , पृ·13-14, प्र·संस्क·1987ई·

21· विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डॉ·के·पी·शहा, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पृ·24

22· विष्णु प्रभाकर के नाटकों के नारी पात्र - रशीद महिबूब देसाई, पृ·53, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पृ·

23· युगे युगे क्रान्ति : विष्णु प्रभाकर, पृ·41, संस्क·1969 ई·

24· विष्णु प्रभाकर संपूर्ण नाटक : खण्ड 6 (श्वेत कमल) - विष्णु प्रभाकर, पृ·11, प्र·संस्क·1989 ई·

25· डॉक्टर - विष्णु प्रभाकर, पृ·51, संस्क·अनुल्लेख्य

26· टकर - विष्णु प्रभाकर, पृ·83, संस्क·1986 ई·

27· टगर - विष्णु प्रभाकर, पृ·83, संस्क·1986 ई·

28· बन्दिनी - विष्णु प्रीाकर - भूमिका, संस्क·1991

29· बन्दिनी - विष्णु प्रभाकर , पृ·74-74, संस्क·1991

30· हिम शिखरों की छाया में - विष्णु प्रभाकर, पृ·85, संस्क·1988 ई·

31· विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य, सम्पा·डॉ·महीपसिंह, पृ·11, प्र·संस्क·1983, (डॉ·विजयेन्द्र स्नातक का लेख "सौम्य साहित्य साधक")

32· विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ·राजलक्ष्मी नायडू, पृ·37-38, संस्क·1991

33· लोकायती वैष्णव विष्णु प्रभाकर - धर्मवीर , पृ·10।। प्र·संस्क·1987ई·